गंगा-पुस्तकमाला का चौंतीसवाँ पुष्प

एशिया में प्रभात

कल्याणसिंह शेखावत बी० ए०

एशिया में प्रभात

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(माधुरी-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का चौंतीसवाँ पुष्प

एशिया में प्रभात

(फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् पॉल रिचर्ड लिखित
Dawn over Asia का अनुवाद)

अनुवादक

ठाकुर कल्याण सिंह शेखावत, बी० ए०

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १)]   सं० १९८१ वि०   [सादी ॥)

प्रकाशक
श्रीछोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
ग० कृ० गुर्जर,
श्रीलक्ष्मीनारायण-प्रेस, बनारस
१४२२–२४

दो शब्द

ग्रंथकार

श्रीमान् पाल एंटनी रिचर्ड का शुभ जन्म फ्रांस-देश में सन् १८४७ की १७ जून को हुआ था। वह बाल्यावस्था से ही विद्याभ्यासी तथा धर्मपरायण थे; इसीलिये उन्होंने वहाँ के विश्वविद्यालय की साहित्य और धर्म-शास्त्र की सर्वोपरि परीक्षाएँ, थोड़े समय में ही, पास कर डालीं। तदनंतर पेरिस के हाईकोर्ट की बैरिस्टरी-परीक्षा में भी वह उत्तीर्ण हो गए।

धर्म-शास्त्र में उनकी अधिक रुचि थी। अतएव उन्होंने लेखनी भी शीघ्र ही उठा ली; और राजनीति, धर्म तथा दर्शन आदि विषयों पर वह लेख भी लिखने लगे। इसके बाद वह पेरिस के "लि सिकल Le Siecle" और "लि आरोरी Le Aurori"—नामक पत्रों की संपादक-समिति में नियुक्त और फिर "जरनल डेस डिबेट्स Journal des Debats" पत्र के संवाददाता हो गए। अल्पकाल के पश्चात् उन्होंने फ्रेंच-भाषा में तीन छोटे-बड़े ग्रंथ लिखे, जिनके नाम ये हैं—

"Le Christ afres La Resurrection", "L'Ether Vivant" और "Le Dieux"। इनमें से पहले दो का अँगरेज़ी में भी अनुवाद हो चुका है।

सन् १९०५ में रिचर्ड महोदय, फ्रेंच-सरकार की ओर से, फ्रेंच-उपनिवेश 'गायना' में, वहाँ के कोवियट-उपनिवेश की दशा

का निरीक्षण करने के लिये, भेजे गए। सन् १९१० में वह पहले-पहल भारतवर्ष में आए, और उसी समय पांडीचेरी में श्री अरविंद घोष से उनकी भेंट हुई। इन दोनों महानुभावों की साधारण जान-पहचान गाढ़ी मैत्री में परिणत हो गई; और सन् १९१४ में जब वह भारत में दुबारा आए, तो उन्होंने श्री अरविंद घोष के साथ दर्शन-शास्त्र-विषयक "आर्य्य" मासिकपत्र की स्थापना की।

कदाचित् उसी समय रिचर्ड महोदय भारत में और भी कुछ परोपकार करने लग जाते; परंतु स्वदेश में महासंग्राम छिड़ जाने के कारण अपने देश की सेवा करने के लिये वह फ्रांस लौट गए, और वहाँ जंगली घोड़ों को ठीक करने के काम पर वह नियुक्त किए गए; परंतु रुग्णावस्था के कारण सन् १९१६ ही में वह सैनिक सेवा से मुक्त कर दिए गए। उनके एक भाई भी, स्वदेश-रक्षा के लिये लड़ते हुए, संग्राम में मारे गए थे।

जैसा कुछ मनुष्य का अंतःकरण होता है, वैसा ही उसका चरित्र भी होता है। अंतःकरण के विरुद्ध चलना प्रकृति के विपरीत चलना है। कुछ काल तक भले ही मनुष्य अपने स्वभाव और अंतःकरण के विरुद्ध चलता रहे; परंतु अंत में उसको उसी मार्ग पर चलना पड़ता है, जिस पर चलने के लिये उसका अंतःकरण प्रेरित करता है। रिचर्ड महोदय विद्यार्थी-जीवन से ही अध्यात्म-वाद, अहिंसावाद तथा शांतिवाद के पक्षपाती थे। परोपकार की चिंता में वह सदा लीन रहा करते थे। ऐसी दशा में, भला वह कबतक दुनिया के झमेलों में फँसे रह सकते थे। योरप के महासंग्राम में जो रुधिर की नदियाँ बहाई गईं, तथा अनेकानेक अत्याचार किए गए, उनसे उनकी आत्मा अत्यंत व्याकुल हो उठी।

वह अपने दिल को मसोस कर बैठे न रह सके। अतः अपने देश—फ्रांस—की सैनिक सेवा से छुट्टी पाते ही उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन को तिलांजलि दे दी, और संसार-भर के कल्याण करने की चेष्टा में लगने के निमित्त अपनी मातृ-भूमि को छोड़कर वह देश-देशांतर में पर्यटन करने के लिये निकल पड़े। पहले-पहल वह जापान आए, और वहाँ अपने उद्देश्यों का प्रचार करने लगे। एशिया-महाद्वीप के राष्ट्रों की एकता और स्वतंत्रता के लिये वह कई बातें सोचने तथा विविध उपाय करने लगे। इस उद्योग में सफलता पाने के लिये उन्होंने फ्रेंच और जापानी भाषा में "To Japan जापान से प्रार्थना", "To the Nations जातियों को संदेश", "The Lord of the Nations जातियों का प्रभु", "The Eleventh Hour अंतिम समय अथवा ग्यारहवाँ घंटा" आदि ग्रंथ लिखे, जिनमें से एक-दो के अँगरेज़ी-भाषांतर भी हो चुके हैं। अपने विश्व-प्रेमपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उन्होंने जापान में एक जातीय-समानता-संघ—League for the Equality of the Nations—बनाया। इस संघ का सविस्तर वर्णन पाठकों को आगे मिलेगा। साथ-ही-साथ वह जापान में और भी परोपकार के कार्य करते रहे। वह कुछ काल तक "Asian Review एशियन रिव्यू"-नामक मासिक पत्र के परामर्शदाता तथा नीति-संचालक रहे। टोकियो के एक विद्यालय में वह दर्शन-शास्त्र के अध्यापक भी रहे।

सन् १९२० में एशिया की एकता और स्वतंत्रता सिद्ध करने के उद्देश्य से वह भारत में आए। यहाँ कुछ दिन रहकर उन्होंने उक्त "जातीय-समानता-संघ" की एक शाखा भारत में

भी खोल दी, और उसके द्वारा अपने मंतव्य का प्रचार करने लगे। इस शुभ कार्य में उन्हें कुछ सफलता भी मिली। वह उन आशावादी मनुष्यों में हैं, जो लाख बाधाएँ उपस्थित होने पर भी कभी हताश नहीं होते। इस महत्कार्य के लिये उनको प्रचुर धन तथा स्वार्थशून्य मनुष्यों की बड़ी ज़रूरत है; परंतु वह रत्ती-भर भी चिंता नहीं करते, बल्कि आशा और विश्वास रखते हैं कि भगवान् स्वयं सब कुछ व्यवस्था कर देंगे।

गत दो-तीन वर्षों में भी उन्होंने अपने प्रचार-कार्य के लिये जो पुस्तकें लिखी हैं वे ये हैं—"The Dawn over Asia एशिया में प्रभात", "The Scourge of Christ ईसा-मसीह की दुर्दशा" और "The Eternal Wisdom अनंत ज्ञान"। अभी तक वह कई महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखने में लगे हुए हैं।

आज कल वह बहुधा हिमालय में—कोटगढ़-नामक स्थान में—जो शिमला से अधिक दूर नहीं है—एकांतवास कर रहे हैं, और जो कुछ उनका अति उच्च, परम उपादेय, महत् स्वार्थशून्य तथा विश्वव्यापक ध्येय है, उसको सफलीभूत करने के लिये आदर्श तथा क्रिया-साध्य उपाय, शांतिपूर्वक, एकांत में, मौनावलंबन किए हुए, सोच रहे हैं। कोटगढ़ में वह एक ऐसा आश्रम भी बनाना चाहते हैं, जहाँ शांतिपूर्वक रहकर और महापुरुषगण भी विश्व के कल्याण के लिये उपाय सोचें, और उन उपायों को कार्य रूप में परिणत करें।

रिचर्ड महोदय की जीवनी आद्योपांत सूक्ष्मतया पढ़कर पाठक समझ सकते हैं कि वह कैसे परम दयालु, सच्चरित्र, उदाराशय, विश्वहितैषी, ज्ञान-संपन्न, मर्मज्ञ विद्वान् और स्वार्थशून्य पुरुष

हैं। उनके विषय में यह भी कह देना मैं आवश्यक समझता हूँ कि उनका कार्य-क्रम राजनीति (Politics) या दलबंदी (Party diplomacy) से नितांत भिन्न है। उनकी कार्य-परिपाटी नैतिक (Moral) और आध्यात्मिक (Spiritual) है। वह किसी एक धर्म के अनुयायी और अंधभक्त भी नहीं हैं। उनका ध्येय विश्व की स्थायी शांति को अहिंसात्मक और आध्यात्मिक रीति तथा शक्ति द्वारा स्थापित करने का है। आजकल जो काले और गोरे का वर्ण-भेद संसार की जातियों में द्वेष फैला रहा है, उसके वह बड़े विरोधी हैं। उनका उद्देश्य है कि ऐसा भेद-भाव झटपट उठ जाय, और संसार की सब जातियाँ—चाहे वे काली, गोरी, लाल, पीली अथवा कैसी भी हों—एक दूसरे पर किसी प्रकार का अत्याचार न करें, और परस्पर प्यारी बहनों की भाँति अपना-अपना उद्धार स्वतंत्रतापूर्वक करती रहें। वह तलवार चलाकर रुधिर बहाने तथा भोले-भाले जन-समुदाय को धोखा देकर उसे पक्षपात के बंधन में फाँसने के कट्टर विरोधी हैं। ऐसे ही नर-रत्नों, महापुरुषों और परोपकारी व्यक्तियों तथा आदर्श-महात्माओं के द्वारा अखिल जगत् का कल्याण हो सकता है। क्या हमारे भारत-पुत्रों में भी कई ऐसे ही उदार-हृदय महापुरुष नहीं हैं? भगवान् से हमारी यही प्रार्थना है कि ऐसे नर-रत्नों की संख्या जगत् के सभी देशों में दिनों-दिन बढ़े, जिससे शीघ्रही शांतिमय भविष्य का निर्माण हो।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, उनका एक ग्रंथ "To the Nations" नाम का है, जिसका हिंदी-अनुवाद मैं कर चुका हूँ। उसका नाम "जातियों को संदेश" है। वह बंबई की "हिंदी-ग्रंथ-

रत्नाकर-सिरीज" का ५० वाँ ग्रंथ है। वह हालही में प्रकाशित हो चुका है। उनके दूसरे ग्रंथ "The Dawn over Asia" के अनुवाद को आज मैं हिंदी-संसार की सेवा में समर्पण करता हूँ। आशा है, हिंदी-संसार इसको सहर्ष ग्रहण करेगा।

ग्रंथ

इस ग्रंथ का नाम "एशिया में प्रभात" रखा गया है, जो The Dawn over Asia का अविकल अनुवाद है। यह नाम इस ग्रंथ के उद्देश्यों का यथार्थ सूचक है; क्योंकि जो महत्वपूर्ण उपाय इस ग्रंथ में बताए गए हैं, वे जब कार्य-रूप में परिणत हो जायँगे, तब निस्संदेह एशिया के गगन-मंडल में स्वतंत्रता, एकता और आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नति का देदीप्यमान भास्कर उदित होगा। उस सूर्य के उगने के पूर्व एशिया में प्रभात हो चुका है। परमपिता की दया से एशिया में परमोज्ज्वल सूर्योदय भी होगा। एवमस्तु।

रिचर्ड महोदय ने अपने उद्देश्यों के प्रचार के लिये जापान-देश में, वहाँ की सभाओं तथा 'जातीय-समानता-संघ' के अधिवेशनों में, समय-समय पर जो व्याख्यान और भाषण दिए, वे ही सब फ्रेंच-भाषा में लिपिबद्ध कर लिए गए। "The Dawn over Asia"-नामक पुस्तक में उन्हीं सब का संग्रह कर दिया गया है। इन भाषणों का अँगरेज़ी-भाषांतर भी तपस्वी अरविंद घोष ने किया है।

मैं आवश्यक समझता हूँ कि इस ग्रंथ के उद्देश्यों और मंतव्यों के विषय में दो-चार शब्द लिख दूँ, ताकि पाठकों को विषय-प्रवेश में सुगमता हो।

श्रीमान् पाल रिचर्ड ने अपने "जातियों को संदेश"-नामक

ग्रंथ में योरपीय महासंग्राम के वास्तविक कारणों का दिग्दर्शन कराते हुए भविष्य में शीघ्र ही होनेवाले उसके परिणामों के संबंध में यह बताया है कि "महासंग्राम में स्वार्थपरता का रावण मारा जाकर भविष्य में शांति का अटल राम-राज्य स्थापित होगा, जिसमें पद-दलित और अधिकृत जातियाँ—विशेषत: एशिया-महाद्वीप की जातियाँ—स्वतंत्रतापूर्वक स्नेह और सहानुभूति के कोमल सूत्र में परस्पर बँधी रहेंगी, और मानव-रुधिर से अपने हाथों को नहीं रँगेंगी।"

इस पुस्तक में पॉल महाशय ने शक्ति, सत्याग्रह तथा पूर्ण विश्वास के साथ इस बात का प्रतिपादन किया है कि आजतक कई जातियों ने अन्य कई जातियों के साथ जो पक्षपात और क्षुद्रता का व्यवहार किया है, वह भविष्य में अधिक कालतक नहीं हो सकेगा, बल्कि समानता का व्यवहार ही इसका भावी परिणाम होगा। ग्रंथकर्त्ता का मुख्य उद्देश्य एशिया को जगाना, एशिया की स्वतंत्रता और एकता का संपादन करना, तथा एशिया में एक ऐसी नवीन सभ्यता को उत्पन्न करना है, जो मानव-जाति के विकास और उसकी पूर्णता का आधार होगी, और जिसको प्राप्त करके मानव-जाति पृथ्वी पर ही स्वर्ग की सृष्टि करेगी।

उपर्युक्त स्वर्गीय और पुण्यशील सभ्यता को प्राप्त करने के लिये उन्होंने बड़ी योग्यता, कुशलता, दूरदर्शिता, प्रामाणिकता, सहृदयता और सहानुभूति के साथ नीचे-लिखे उपाय बताए हैं—

(१) एशिया की भिन्न-भिन्न जातियाँ अपने पारस्परिक कलह और क्षुद्रता को त्यागकर एक हो जायँ, और मिलजुलकर एशिया का सर्व प्रकार से उद्धार करें।

(२) इस महत्कार्य में जापान एशिया के राष्ट्रों का नेता बने; क्योंकि जापान विद्या, बुद्धि और कला-कौशल में एशिया की समस्त जातियों में बढ़ा-चढ़ा है। जापान अपने झूठे स्वार्थों को त्याग कर—(उदाहरणार्थ, कोरिया-प्रांत को स्वतंत्र करके)—एशिया को स्वतंत्रता और एकता का पवित्र मंत्र सिखावे, और अंत में समस्त संसार को भी उसी शांति का पाठ पढ़ावे।

(३) जापान में जो योरप की बहुत-सी बातों की नक़ल करने का 'भौंड़पन' आ गया है, उसको वह सर्वथा छोड़ दे; क्योंकि इस प्रकार अनुकरण करने से कई तरह की हानियाँ हैं, जिनमें प्रधान यह है कि जिस योरप की नक़ल की गई, अथवा की जा रही है, वह योरप स्वयं बदल रहा है, और भविष्य में वह और भी अधिक बदलेगा। जहाँ ज़ार-शाही थी, वहाँ मज़दूर-शाही का नक़ारा बज गया; जहाँ क़ैसर-शाही थी, वहाँ प्रजातंत्र की दुहाई फिर गई; जहाँ स्वछंदतापूर्वक राजा राज करता था, वहाँ पूँजीपति धनिक लोग आत्म-लाभके लिये पार्लियामेंटों में बैठकर क़ानून बना रहे हैं; जहाँ पूँजीपति अपने प्रभाव को काम में ला रहे थे, वहाँ मज़दूर-दल समस्त शक्ति को कर-तल-गत करने के लिये प्राण-पण से चेष्टा कर रहा है; और जिस व्यवस्था की नक़ल उतारी जाती है, वह स्वयं अपना चोला बदल रही है। ऐसी दशा में, उसकी नक़ल करना तो साफ़ तौर से पीछे रहना और उन्नति का तिरस्कार करना है।

(४) योरप तथा अमेरिका के प्रजातंत्र के सुरीले और लुभावने राग को सुनकर एशिया-महाद्वीप मोह-ग्रस्त हो गया है। परंतु, पहले यह भी तो देखना आवश्यक है कि उन देशों का

प्रजातंत्र वास्तव में सच्चा, लाभदायक और पवित्र है या नहीं ; 'प्रजातंत्र' का अर्थ तो यही है न कि किसी देश में मनुष्य वहाँ के समाज पर मनमानी न करने पावे ? परंतु साथ ही यह भी सोचना उतना ही आवश्यक है कि एक मनुष्य की तरह दुष्ट प्रकृति के अनेक मनुष्य, अपने निजी स्वार्थों की रक्षा करने के लिये, जन-साधारण को चकमा देकर, उनके स्वत्वों को जार या क़ैसर से भी अधिकतर भयंकरता के साथ न कुचल डालें । क्या कई देशों के मालदार और स्वार्थी आदमी वहाँ की राष्ट्र-सभाओं में घुसकर प्रजातंत्र की धूल नहीं उड़ा रहे हैं ? अमेरिका के प्रजातंत्र में कई ऐसे दोष उपस्थित हो गए हैं, जिनके कारण वहाँ भी वास्तविक स्वतंत्रता लुप्तप्राय-सी हो गई है । सच्चा और वास्तविक प्रजातंत्र तो वह है, जिसमें छोटे और बड़े अपने निजी लाभों की पूर्ति की चेष्टा को त्यागकर समान लाभ, समान प्रतिष्ठा और समान प्रेम के भाव में रत हो जायँ । जापान को इसी प्रकार की स्वार्थशून्य एवं जगदुपकारिणी प्रजातंत्र-सभ्यता का निर्माण करना चाहिए; ताकि बड़े लोग छोटों की और छोटे लोग बड़ों की चिंता करें, और आपस की थुक्का-फ़ज़ीहत करने तथा एक दूसरे के मुँह का कौर छीनने के लिये दलबंदी न करें । यही जापान का धार्मिक कर्त्तव्य और व्यावहारिक उपदेश तथा सच्चा संदेश होना चाहिए ।

एशिया के भिन्न-भिन्न भागों में कुछ ऐसे महामना, उदार-स्वभाव और देवोपम मनुष्य उत्पन्न हो चुके हैं, और भविष्य में भी अधिकतर संख्या में होंगे, जो वस्तुतः ईश्वर के साक्षात् अवतार ही होंगे । वे समस्त एशिया को सच्ची स्वतंत्रता, सच्ची

एकता और सच्ची परमार्थता के दिव्य उपदेश-मंत्र से दीक्षित कर, न केवल एशिया ही को एक करके उसका उद्धार करेंगे, बल्कि अखिल जगत् का कल्याण करेंगे। ऐसे मनुष्य अत्यन्त अवतारी पुरुष होंगे। ऐसे कुछ तो अभी से विद्यमान हैं, जो अपना उदार मत फैला रहे हैं। एक दिन वे सब एक ही स्थान पर इकट्ठे हो जाएँगे, और अपना संघ या सम्मेलन बना लेंगे। संसार के लाभ, प्रतिष्ठा और शांति का संरक्षण वे रुधिर बहाकर सैनिक बल से नहीं, किंतु आध्यात्मिक बल से करेंगे। इस प्रकार स्वार्थांधता धीरे-धीरे विलीन हो जायगी, और प्रत्येक मनुष्य सच्चा और परमार्थी बनकर स्वर्ग का पुत्र बन जायगा। भारतवर्ष के श्रीअरविंद घोष को भी रिचर्ड महोदय ने ऐसे ही महापुरुषों में गिना है, और कहा है कि वह एक दिन हजारों के गुरु बन जायँगे, तथा मानव-समाज को अहिंसा एवं परमार्थ का पाठ पढ़ावेंगे। एवमस्तु।

इस पुस्तक के अंत में जो परिशिष्ट है, उसमें जापान के "जातीय-समानता-संघ" का विस्तृत वर्णन दिया गया है।

निवेदन

आज शरत्-पूर्णिमा की रात्रि है। चंद्रमा की शांतोज्ज्वल सुशीतल चाँदनी से नभ-मंडल रजत-मंडप हो रहा है। मैं अपना यह निवेदन समाप्त करते हुए परमपिता परमात्मा से यही हार्दिक प्रार्थना करता हूँ—जैसी कि मैंने "जातियों को संदेश"—नामक पुस्तक के प्राक्कथन में की है—कि वह जगदाधार जगदीश हम सबको ऐसी सुबुद्धि दे, ऐसा सुज्ञान दे, ऐसी सुशक्ति दे, और साथ ही इन सबको धारण करने के लिये ऐसा सुपरिपक्व

मस्तिष्क तथा उर्वर हृदय दे कि हम एक दूसरे के रक्त के प्यासे न रहें, बल्कि स्नेह और सहानुभूति तथा भाई-चारे और मित्रता के कोमल बंधन में बँधे रह कर अखिल जगत् का कल्याण करें, और इस संसार को स्वर्ग में परिणत कर दिखावें।

शरत्-पूर्णिमा विक्रम्-संवत् १९७९ खाचरियावास-कोर्ट (राजपूताना)	विश्वव्यापी शांति का आकांक्षी विनीत— कल्याण सिंह

विषय-सूची

एशिया में प्रभात
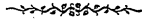
पहला प्रकरण

एशिया की एकता

(जातीय-समानता-संघ के अधिवेशन में २२ मार्च, १९१९ को टोकियो में दिया हुआ भाषण)

आज आपने जो विना जातीय पक्षपात के इस सभा में मेरा स्वागत किया है, उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। इस सम्मेलन में मेरी तथा अन्य बाहरी मित्रों की उपस्थिति इस बात की सूचना देती है कि यहाँ पर निरी जाति-हितैपिता की अपेक्षा कुछ अधिक गंभीर भाव मौजूद हैं। इतना ही नहीं, बल्कि जो भाव विद्यमान हैं, वे एशिया-हितैषिता की अपेक्षा भी उच्चतर हैं। यहाँ पर जातीयता और राष्ट्रीयता के ऊपर मानव-एकता और समान मानव-लाभ का भाव अंतर्व्याप्त है, जो मनुष्यता के नवीन और उच्चतर सिद्धांत पर अवलंबित है। मानव-आकाश में इसी भाव का उदय हो रहा है। यह प्रभात भी अन्य प्रभातों की नाईं पूर्व दिशा में ही हो रहा है। एशिया के समक्ष में इसी

प्रभात की घोषणा करता हूँ; क्योंकि मेरी आत्मा एशिया की विशाल आत्मा में मिश्रित हो गई है।

जब आप लोग जातियों की समानता—भ्रातृ-भाव—के विषय में चर्चा करते हैं, तब मैं फ्रेंच होकर इसको कैसे भूल सकता हूँ; क्योंकि यह शब्द और यह विचार फ्रांस-देश के हैं। योरप के समस्त देशों में क्या मेरा देश साम्यवाद को प्रश्रय देने में सर्व-प्रथम और अद्वितीय नहीं है? मेरे ही देश ने काले और गोरे चमड़े (वर्ण-भेद) के व्यर्थ प्रश्न को अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझकर अपनी पार्लियामेंट में कृष्ण वर्ण के अफ्रिका-निवासी मनुष्यों के प्रतिनिधियों को स्थान देने का गौरव प्राप्त किया है। मेरे ही देश ने जाति-संबंधी पक्षपात को अपनी शान के खिलाफ़ समझा है। आज की इस सभा में हम लोगों की उप-स्थिति इस बात को प्रमाणित कर रही है कि फ्रांस-देश पहले भी आदर्श नेताओं का देश था, और अब भी है।

तो भी यदि मैं आपसे यह कहूँ कि आप पेरिस की शांति-परिषद् से बातचीत और लिखा-पढ़ी करके अपने अभीष्ट की संपूर्ण सिद्धि को प्राप्त हो जायँगे—जातियों की पारस्परिक विषमता दूर करने में समर्थ होंगे, तो अवश्यमेव मैं झूठा बनूँगा; क्योंकि पेरिस-राष्ट्र-संघ के अधिष्ठाता चाहे जितने धुरंधर, महान् और शक्तिशाली पुरुष हों, उनके साथ लिखा-पढ़ी करके आप इस विषय में कुछ भी फल प्राप्त नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि आपका जो ध्येय है, उसकी पूर्ति करना उनकी शक्ति के बाहर है।

क्या आप समझते हैं कि मनुष्यों के अज्ञान और घमंड

को वे लोग एक गंभीर फ़ैसले (Decision) से दवा सकते हैं ? स्मरण रहे कि इसी घमंड और अज्ञान के कारण भिन्न-भिन्न जातियाँ और राष्ट्र, तथा एक ही जाति के स्त्री-पुरुष, आपस में भी मिथ्या दोषारोपण और मनमुटाव किया करते हैं। क्या आप इस बात को विचार में ला सकते हैं कि पेरिस-राष्ट्र-संघ के संचालक एक शब्द से—एक बार की आज्ञा से—मनुष्य की मूर्खता को, जो मानव-समाज में अन्याय की जननी है, नष्ट कर सकते हैं ? यदि आपका आदर्श उनके लाभों से सामंजस्य नहीं रक्खेगा, तो क्या आप नहीं समझ सकते कि वे इस पर तनिक भी ध्यान नहीं देंगे ? क्योंकि उनका आदर्श अपने स्वार्थ-पूर्ण विचारों को फलीभूत करने और उन पर आदर्श नाम का एक परदा डालने ही में है। यदि आपने राष्ट्र-संघ से ऐसी आशा धारण की है, तो आपके लिये अच्छा होगा कि आप इस माया-जाल को त्याग दें, ताकि आप किसी श्रेष्ठतर आशा को ग्रहण कर सकें।

आप पुराने योरप से किस बात की आशा रखते हैं ? जब यह नवीन भाव, या नवीन आत्मा, स्वयं योरप में तो है ही नहीं, तो फिर वह आपको कहाँ से देगा ? यह शुद्ध आत्मा तो आप में है, और आप ही से उसको भी मिल सकती है। आपको इस बात की आवश्यकता नहीं है कि इसके लिये गिड़गिड़ाकर आप योरप के हाथ जोड़ें। यह आपका काम नहीं है कि जाती-यता के खून से सने हुए घमंड को छोड़ने के लिये आप योरप से कहें, बल्कि आपका कर्त्तव्य तो यह है कि आप उसको इस दोष से बचावें। आप ही उसको कुछ दे सकते हैं। आप उससे,

कुछ पाने की आशा न रक्खें। उसके सुपरिवर्त्तन या पुनर्जन्म के अतिरिक्त उससे किसी बात की उम्मीद न रक्खें।

क्या आप नहीं देखते हैं कि प्रेम द्वारा योरप को ईर्ष्या, घृणा और अस्तव्यस्तता के जाल से बचाने की कितनी बड़ी आवश्यकता है? मैं समझता हूँ, आत्मा के प्रकाश के द्वारा उसके मानसिक अंधकार को हटाने और पुनर्जीवन (Resurrection) द्वारा उसे मृत्यु से बचाने की बड़ी जरूरत है; क्योंकि जो योरप पहले था, वह अब नहीं है। आज वह अपने ही पाप के नीचे गड़ा हुआ पड़ा है। योरप को इस समय जैसा होना चाहिए था, वैसा वह अभी तक नहीं हुआ है। वह प्रतीक्षा कर रहा है, और प्रतीक्षा कर रहा है एशिया की। क्या सदैव से ऐसा होता नहीं चला आ रहा है कि आध्यात्मिक ज्ञान की किरणें और जीवन की लहरें एशिया ही से उठकर योरप की ओर बढ़ती रही हैं। और, भविष्य में क्या ऐसा नहीं होगा? क्या भूतकाल में भी संसार की जातियों को मोहांधकार के गड्ढे में गिरने से बचानेवाले उद्धारक एशिया ही से नहीं गए हैं? और, भविष्य में क्या वे नहीं जायँगे? इसलिये मैं—योरप की संतान—यहाँ आकर आपसे कह रहा हूँ कि "एशिया! जाग"।

एशिया को भौतिक और आध्यात्मिक दो प्रकार से जगाना चाहिए। पहले समस्त एशिया को एकता के अटूट सूत्र में बद्ध करके, उसका सुदृढ़ संघटन करके, उसे जगाइए। परंतु इस कार्य का संपादन करने के लिये एशिया की जातियों के स्वामी मत बनिए, बल्कि मित्र और सहायक बनिए। जातीय पक्षपात—दलबंदी—के विचारों को छोड़ दीजिए। उनके साथ भाई-भाई की तरह मिलिए,

उन्हें भूलकर भी गुलाम न समझिए। जो आज गुलाम कहलाते हैं, उनका ऐसा उद्धार कीजिए, उन्हें इस तरह अपनाइए कि वे आपके भाई बन जायँ। उन सबको मिलाकर एक ही परिवार—एक ही कुटुंब—बना डालिए। एशिया की जातियों का एक आदर्श संघ बनाकर उसकी संयुक्त सरकारों का एक विराट् राष्ट्र बना लीजिए।

यह सब करने के लिये एक काम और कीजिए। एशिया की जातियों में सबसे पहले पारस्परिक एकता का ज्ञान जाग्रत कीजिए। प्रत्येक मानव-शरीर में घट-घट-व्यापी ब्रह्म का अस्तित्व है—ऐसे ज्ञान की जागृति से एशिया की जातियों को भ्रातृत्व के शुद्ध बंधन में बाँधकर समूचे राष्ट्र की बिखरी हुई शक्तियों को एक कर दीजिए। यही (आत्मज्ञान) एशिया का एक ऐसा पवित्र भंडार है, जिसको योरप छीन नहीं सकता। यह उसका आदिम आविष्कार और पैतृक संपत्ति है—उसका साक्षात् सत्य है। भौतिक विज्ञान योरप की आधुनिक वैज्ञानिक शक्ति का आधार है। इसका अंतिम परिणाम भीषण ह्रास के अतिरिक्त और कुछ नहीं। आध्यात्मिक विज्ञान एशिया की पैतृक संपत्ति है। उसमें अनंत जीवन है, वह अखंड शक्तिशाली है—नाशवान अथवा परिवर्तन-शील नहीं।

इसीलिये पश्चिम के साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं (ग्रीस, रोम, सीडान और कारथेज़ के साम्राज्यों में से कौन-सा बचा है ?), परंतु सहस्रों वर्षों के प्राचीन साम्राज्य भारत, चीन और जापान आज तक बने हुए हैं। वे इसी आध्यात्मिकता के बल पर आज तक ठहरे हुए हैं। एशिया में ही बारंबार आध्यात्मिक ज्ञान का

नूतन संस्कार हुआ है। आध्यात्मिक ज्ञान ही सात्विक जीवन का एकमात्र गंभीर और रहस्य-पूर्ण कारण है। इसी के द्वारा एशिया की जातियों में सच्ची एकता के ज्ञान का पुनर्जन्म होता आया है। यह वही आधार और सिद्धांत है, जिस पर भावी संसार का सुपुष्ट निर्माण होगा।

देखिए, समस्त जातियाँ इसीलिये प्रसव-पीड़ा से ग्रस्त हो रही हैं कि उस नवीन भाव का जन्म हो जाय। प्रत्येक जाति उस भाव को प्रकृति के अनुसार उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रही है। आजकल के कई विजेता राष्ट्र इस एकता को अपनी शक्ति की विषमताओं के द्वारा स्थापित करना चाहते हैं; क्योंकि वे उसी भाव को अब जीतना चाहते हैं, जिसको वे सदैव से धारण किए हुए हैं। वे वास्तव में विजेता नहीं, वलिक विजित हैं, और यही कारण है कि जब वे जहाँ कहीं शांति की चर्चा करने के लिये एकत्र होते हैं, वहीं रण-चंडी भी आमंत्रित होती है; क्योंकि शांति के नाम से वे शक्तियों का प्रभुत्व जमाना चाहते हैं।

अब देखिए! इन विजेताओं के प्रभुत्ववाद का उत्तर विजित वर्ग के लोग किस प्रकार से देते हैं। धनवानों और बड़ों के राज्यों का वे विरोध और ग़रीबों के राज्य की स्थापना का समर्थन करते हैं। विजेता राष्ट्र स्वर्ग के राज्य—समानता के राज्य—को वल-प्रयोग द्वारा छीनने का प्रयत्न करते हैं; अर्थात् योरप में राज-सत्ता और प्रजा-सत्ता में भीषण विरोध उत्पन्न हो गया है, एक दूसरे पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं, एक दूसरे पर अपना रोब जमाना चाहते हैं। परंतु आप लोग इन दोनों ही दलों की कार्य-प्रणाली का अनुकरण

करने के लिये क्यों बाध्य हो रहे हैं ? आपको तो चाहिए कि आप दोनों के सामने एक आदर्श उदाहरण रक्खें, तथा स्वयं अपने ही अंदर भ्रातृ-भाव और समानता की एकमात्र संस्था को—समस्त जातियों की सच्ची एकता और पारस्परिक प्रीति को—स्थापित करके सबको शिक्षा दें।

इसी शुभ नींव पर, इसी उन्नत सिद्धांत पर, एशिया की भावी सभ्यता का निर्माण कीजिए। उस सच्ची समानता को स्थापित कीजिए, जिसमें बड़प्पन और उदारता अंतर्व्याप्त हों। उस वास्तविक न्याय को, जो सौंदर्य को भी अपने अंतर्गत रखता है, निर्मित कीजिए। उस सच्चे प्रजातंत्र का संगठन कीजिए, जिसमें पवित्र संकेतों और चिन्हों—ईश्वरवाद—को भी स्थान मिलता है, जिसमें भौतिक स्वार्थवाद और ईश्वरवाद सम्मिलित रहते हैं। एकता के साम्राज्य की रचना कीजिए। केवल इसी एक तरीक़े से आप जातीय विषमता के राज्य का नाश कर सकेंगे।

दूसरा प्रकरण

एशिया का भविष्य

[यह भाषण, टोकियो में, जातीय-समानता-संघ के २४ एप्रिल, १९१९ के अधिवेशन में दिया गया था]

एक मास पूर्व मैंने आपसे कहा था कि जिनसे आप लिखा-पढ़ी कर रहे हैं, उनसे कुछ भी प्राप्ति की आशा न रक्खें। ऐसे कथन के लिये मैं क्षमा चाहता हूँ। परंतु जब आपने मुझे आज्ञा दी है कि मैं आपके समक्ष उपस्थित होकर एक बार फिर कुछ निवेदन करूँ, तो इस बार मैं यह कहने के लिये आया हूँ कि आप अपने आप और भविष्य से ही सब कुछ प्राप्त करने की आशा रक्खें।

क्या आप नहीं देखते हैं कि इस संसार की समस्त जातियों में सारी व्यवस्थाएँ बदलनेवाली हैं? ऐसी दशा में अफ़सोस केवल उनके लिये है, जो अपने आपको बदलने से मुँह मोड़ रहे हैं। वे अवश्यमेव नष्ट होंगे, जो न्यायी और खरे नहीं हैं। वे सचमुच खेद के पात्र हैं। वे अभी से मिट्टी में मिल गए हैं, अपराधी बन गए हैं। क्या आप नहीं देखते कि भूतकाल मरणोन्मुख हो रहा है, मर रहा है, बल्कि मर चुका है? अब उसका केवल आभासमात्र—छायामात्र—दिखाई दे रहा है। भविष्य में उसके भग्नावशेष के अतिरिक्त और कुछ भी बचा नहीं रहेगा। क्या

आप इसी मृतप्राय भूत से न्याय की आशा रखते हैं ? क्या भविष्य की बातों को, जातियों की समानता को, भ्रातृ-भाव और एकता को, आप इस अतीत भूत से माँगते हैं ? इससे ऐसी प्रार्थना करनी ही आपकी भूल है। जो इस भूत के पक्षपाती और समर्थक हैं, उनसे याचना करना आपकी ग़लती है। इन लोगों को आदर्शवाद (Idealism) तभी तक रुचिकर होता है, जब तक वे उसमें अपना कुछ स्वार्थ देखते हैं। जिस समय ये लोग शक्ति और प्रधानता के स्वामी नहीं होते, केवल उसी समय ये सत्य के बनावटी दास बन बैठते हैं। जब कभी ये और कुछ करने में लाचार होते हैं, तभी न्यायी बन बैठते हैं। परंतु जब ये अपने स्वार्थ की पूजा कर सकते हैं, तब न्याय और खरे-पन को दूर फेंक देते हैं।

इसलिये भूत को तो अब क़ब्र में जाने दीजिए। अब केवल भविष्य की ओर दृष्टिपात कीजिए। परंतु अपने लिये इस बात का ध्यान रखिए कि भविष्य ही भूत का घाटा पूरा कर सकता है। दूसरों के साथ, अपने से दुर्बलों के साथ, ऐसा कोई भी बुरा काम मत कीजिए कि जिसके लिये भविष्य में प्रतिकार करना पड़े। जब एक अन्याय हो जाता है, और उसके लिये किसी के हृदय में दया-भाव उत्पन्न होता है, तो वह दया-भाव अत्याचार-पीड़ित के प्रति नहीं, बल्कि अन्यायकारी के प्रति होता है; क्योंकि ऐसा करके भविष्य में वह अपने आपको पृथक् कर डालता है, भविष्य को अपना भारी शत्रु बना डालता है, अपनी दुर्दशा का आप ही कारण बन जाता है।

इसलिये आपके साथ जो अन्याय हुआ है, उसके लिये

यदि किसी पर दया-भाव दिखाना है, पश्चात्ताप करना है, तो वह आपके लिये नहीं है। आपके उदीयमान भास्कर की ज्योति केवल पूर्व में रहनेवाली उन जातियों के ही लिये नहीं है, जिनके सम्मुख प्रभात होनेवाला है, बल्कि उन दूसरी पाश्चात्य जातियों के लिये भी है, जो अपने प्रतापादित्य को उन्नति के चूड़ांत शिखर पर पहुँचने के उपरांत अस्त होता हुआ देख रही हैं। दया करने का, पश्चात्ताप के साथ हाथ मलने का, कर्त्तव्य योरप का है, जिसने एशिया के साथ भूत में अन्याय किया है, न कि जिसने एशिया का अन्याय सहन किया है। यदि किसी को अपने आप पश्चात्ताप करने और लज्जित होने की ज़रूरत है, तो निस्संदेह एशिया की काली और पीली जातियों के पुत्रों को नहीं, बल्कि उस जाति के पुत्रों को, जो अब भी केवल रंग ही में गोरी हैं, जो अभी तक प्रायश्चित्त की परीक्षा में केवल आधी ही सुधरी हैं, और जो महासंग्राम-रूपी भीषण यज्ञ में आधी ही पवित्र हुई हैं।

वह जाति अपने को ईसाई कहती है। महात्मा क्राइस्ट (ईसा) एशिया के थे; इसलिये वह एशिया ही के एक पुत्र को पूजती है। अब यदि एशिया का वही पुत्र क्राइस्ट (ईसा) फिर इस पृथ्वी पर आवे, तो विचारा अमेरिका से, जो ईसाइयों का देश है, इसलिये बाहर निकाल दिया जाय कि उसके पास डालरों (अमरीका के सिक्के) की उतनी बड़ी थैली नहीं है, जितनी कि एक सभ्य मनुष्य के पास होनी चाहिए। इतना ही क्यों, विचारा आस्ट्रेलिया से भी सिर्फ़ इसीलिये बाहर निकाल दिया जाय कि वह एक श्रमजीवी का पुत्र है, एशिया में उसका जन्म

हुआ है, वह किसी विदेशी भाषा की परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सका है, और वह निर्धन दक्षिण अफ्रिका के उपनिवेशों की ट्रामगाड़ियों में एशियावासी होने के कारण ईसाई और योरपियन लोगों के साथ बैठ नहीं सकता। आह! यदि ईसा अब कहीं फिर इस भूलोक में आ जाय, तो उसी के नाम से प्रचलित ईसाई-धर्म के अनुयायी न जाने उसकी कैसी दुर्गति कर डालें; और फिर तुर्रा यह कि वे इसे सभ्यता भी कहते रहें!

जातियों की वास्तविक मूर्खता है क्या? आपस में आदर भाव का न होना, पारस्परिक सहृदयता को न समझना, मदांध और स्वार्थ-लोलुप होकर आपस के सद्भावों को भूल जाना, यही तो जातियों की अज्ञानता और मूर्खता है। घमंड के समान और मूर्खता है ही क्या? अज्ञान ही तो अभिमान का मूल है। किसी काल में जब आपका पूर्व (एशिया) हमारे पश्चिम (योरप) से घृणा करता था, तब वह गँवार नहीं तो और क्या था? उसी प्रकार आज जब हमारा पश्चिम आपके पूर्व को ओछी दृष्टि से देखता है, तब वह भी गँवार है। जब तक योरप अपनी माता एशिया को नीचा दिखाने का अभ्यास न त्याग दे, तब तक वह अपने को सभ्य नहीं कह सकता।

क्या मैं आपको उस बात का दुबारा स्मरण करा दूँ कि सच्चा फ्रांस-देश, जिसने मनुष्य के जन्म-सिद्ध अधिकारों की रक्षा करने की घोषणा की थी, और जिसका आदर्श शब्द, मेरी सम्मति में, समस्त जातियों के स्वत्वों की स्वतंत्रता की घोषणा करेगा, मनुष्यत्व के प्रति वर्ण-विभेद के पाप-पूर्ण पक्षपात में औरों की अपेक्षा कम अपराधी है? मेरा देश फ्रांस जब स्वयं अपने

लिये ही झूठा नहीं है, तो वह निश्चय ही इतना बुद्धिमान और उन्नत है कि वह किसी से घृणा नहीं करेगा। योरप के कई राष्ट्र दूसरों से तो वहुत कुछ चाहते हैं, एशियावालों से तो मुक्तद्वार ही चाहते हैं; परंतु आश्चर्य है कि वे अपने द्वारों को एशिया के लिये बंद रखते हैं। ओशेनिया (प्रशांत महासागर) में कई फ्रेंच टापू ऐसे हैं, जिनके बंदरगाहों और नगरों के द्वार आपके लिये सदैव खुले पड़े हैं। उनमें आप आनंद से जाइए, वहाँ आपके साथ कोई जातीय पक्षपात-पूर्ण व्यवहार नहीं करेगा। सोसाइटी टापुओं में—टेहिटी, पेपाइटी, मारकेसस, नवीन कैलिडोनिया, नोमिया इत्यादि में—जाइए, वहाँ फ्रांस के नाम पर मित्र के समान आपका आदर होगा।

पर इतना मैं अवश्य स्वीकार करूँगा कि हमारे यहाँ के इस व्यवहार से केवल संतोष होता है, उस रोग की संपूर्ण चिकित्सा अथवा शांति नहीं होती। आप यहाँ केवल संतोष पाने के लिये ही नहीं आए हैं, वल्कि इसके अलावे कुछ और भी करने आए हैं। मैं जानता हूँ कि आपमें से कितने ही सज्जन जातियों के राष्ट्र-संघ से शीघ्र ही अलग हो जाना अपना कर्त्तव्य समझेंगे। किंतु, यदि आप ऐसा निश्चय कर लेंगे, तो उन लोगों को बड़ा आश्चर्य होगा, जिन्होंने आपके जापानी प्रतिनिधियों के द्वारा संशोधित प्रस्ताव को पेरिस-राष्ट्र-संघ में अस्वीकृत कर दिया था; क्योंकि यदि वे इसका विचार कर लेते कि आप इस प्रकार चलने का साहस करेंगे, तो वे अपनी सम्मति निस्संदेह और ही प्रकार से देते।

परंतु यदि मैं स्वयं अपना सच्चा मत प्रकाशित करूँ, तो मैं यही कहूँगा कि यह प्रश्न कोई विशेष महत्व नहीं रखता; क्योंकि

उसमें आप लोग हों या न हों, योरप अथवा पेरिस का शांति-स्थापक जातीय संघ, जो भेड़ की खाल से ढका हुआ भेड़िया है, मेरी राय में, कुछ अधिक काल तक जीवित नहीं रह सकेगा। चाहे इच्छा से हो या अन्य कारणों से, उस संस्था के अनुयायी बहुत कम हैं। इस दिखाऊ प्रजा-सत्तात्मक संस्था को अधिकारियों और प्रबल राज-पक्षियों की सभा के रूप में परिणत होने के लिये कुछ थोड़ी-सी लिहाज़-मुरौवत छोड़ देने की आवश्यकता है। यदि यह संस्था जीवित रह सकेगी, तो यह अवश्यमेव हेग में रूस के ज़ार द्वारा निर्मित शांति-मंदिर से भी उच्चतर होकर हम लोगों को मनुष्यता के संहार करनेवाले भयंकर युद्धों के लिये सिगनल (संकट-सूचक संकेत) बन जायगी; क्योंकि उत्तमोत्तम पदार्थ के दूषित होने के समान संसार में और कुछ बुराई हो नहीं सकती, और जब तक मनुष्यों के हृदय न बदल जाँय तब तक उत्तमोत्तम संस्थाएँ भी असत्य के स्तूप हैं—पाखंड के मंदिर हैं। पर पेरिस के इस राष्ट्र-संघ से संबंध-विच्छेद कर लेने से ही काम न चलेगा। यह तो एक अक्रियात्मक कर्म होगा। यदि आप जो कुछ करना चाहते हैं, आपका जो कुछ ध्येय है, वह यदि आपका निजी स्वार्थ न होकर सचमुच एक आदर्श है, तो स्वयं आप ही को उस आदर्श को कार्य में परिणत करना पड़ेगा। स्वयं आपको ही उन सब छोटी-बड़ी, काली-गोरी और लाल-पीली जातियों का, जिनका मनुष्यत्व से कुछ भी संबंध है, जिनकी किसी भी प्रकार की भाषा और इतिहास है, एक सच्चा समाज स्थापित और संगठित करना होगा। बस, यही एकमात्र कार्य है, जो आपको करना चाहिए, और जिसका होना अत्यावश्यक है।

इसलिये आप इसीकी तैयारी करें। समस्त मानव-जातियों की कांग्रेस का, उनके विशाल परिवार के प्रेम-सम्मेलन का, आप ऐसा संगठन करें, और भूमंडल में बसनेवाली असंख्य जातियों को इस उद्देश्य से एक सूत्र में बाँधें कि अंततोगत्वा सच्चे न्याय और सच्ची शांति की स्थापना हो जाय। यदि आप सच-मुच महान् बनना चाहते हैं, तो इस महान् कार्य को संपन्न कीजिए, भविष्य में आनेवाली इस महती विजय के लिये तैयारी कीजिए।

इस तैयारी को पूरा करने के लिये आप पहले-पहल एशिया ही से कार्य का श्रीगणेश करें। यही आपकी उचित कार्य-परिपाटी होगी। पहले एशिया की स्वतंत्र जातियों ही की कांग्रेस को संगठित कीजिए; क्योंकि वह समय आ रहा है, जब एशिया की समस्त जातियाँ स्वतंत्र बन जायँगी। जब तक अन्य जातियाँ गुलाम बनी रहेंगी, तब तक कोई भी जाति वास्तव में स्वतंत्र नहीं होगी। जब तक सबका आदर-सम्मान नहीं होगा, तब तक किसी एक का भी आदर-सम्मान नहीं होगा। यदि आप अन्यत्र अपना आदर-सत्कार कराना चाहते हैं, तो पहले दूसरी जातियों का आदर-सत्कार कीजिए; जो जातियाँ आपके अधीन हैं, उनको स्वतंत्र कर दीजिए, ताकि एक दिन सब जातियाँ स्वतंत्र हो जायँ; क्योंकि दूसरों को बंधन में रखना अपने आपको बंधन में रखना है।

एशिया को बचाकर अपना बचाव करने का यही सच्चा उपाय है, और एशिया का उद्धार होने से अखिल जगत् का उद्धार हो जायगा; क्योंकि एशिया ही समस्त संसार का हृदय

है। निस्संदेह यही एकमात्र उपाय है कि एशिया के लिये एक नवीन सभ्यता बनाई जाय; क्योंकि एशिया पर ही भूमंडल की आशा अवलंबित है। केवल यही एक मार्ग है, जिसके द्वारा आज का दुःख और पतन उस गौरव के रूप में विलीन हो जायगा, जो आपका आवाहन कर रहा है।

तीसरा प्रकरण

जापान का संदेश

(यह वक्तृता, २६ एप्रिल, १९१९ को, टोकियो नगर में, दी गई थी)

विश्व-विख्यात मारशल पिटैन नामक एक प्रतिष्ठित फ्रांसीसी योद्धा महापुरुष ने गत २६ फ़रवरी, १९१९ को कर्नल कोवा-यार्शी के सम्मुख जापानी समाचारपत्रों के पाँच संवाद-दाताओं से कहा था—"जापान को चाहिए कि वह उस अर्थवाद को त्याग दे, जिसकी दुर्बलता जर्मनी द्वारा संपूर्णतः प्रमाणित हो चुकी है, और उसे अपने निजी ऐतिहासिक आदर्श का भी विकास करना चाहिए।" आपने मुझे निमंत्रण दिया, और मैं उपस्थित हो गया। जो कुछ मैं आज आपके सम्मुख उपस्थित करूँगा, वह और कुछ नहीं, केवल इसी वाक्य की गूँज है। फ्रांस का यही संदेश है। आज मारशल पिटैन और मेरे द्वारा फ्रांस आप से पुकार-पुकारकर कह रहा है कि नीचे की वस्तुओं का आक-र्षण ही जातियों को रसातल में ले जा रहा है, इसलिये ऊपर की ओर देखो! जर्मनी भी अपनी क़ब्र के अंदर से चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है—"धन का प्रेम सर्वनाश की ओर और शक्ति का घमंड मृत्यु की ओर ले जाता है।" चार वर्ष तक उस विशाल नाटक को देखकर, जिसमें बीसों जातियाँ अस्तव्यस्त हो गईं, जिस-में एक सभ्यता शून्य की ओर ढकेल दी गई, एक संसार मटिया-मेट कर दिया गया, क्या आपने बड़ा भारी सबक़ नहीं सीखा?

वह सबक़ एक ही शब्द में संक्षिप्त किया जा सकता है, और वह शब्द है आदर्श। आदर्श का अनुकरण करो; क्योंकि एकमात्र मार्ग और उद्देश्य यही है, और ये ही मार्ग और उद्देश्य निश्चित, साध्य और सच्चे हैं।

अब हमें एक स्वप्न की रचना करनी चाहिए। हमें एक ऐसे सर्वोत्तम कार्यक्रम का विचार करना चाहिए जिसको जापान स्वयं कार्य में परिणत करे, और एक आदर्श उदाहरण बन कर उसे अखिल जगत् के लिये भेंट करे। वह कार्यक्रम होगा। एशिया की नवीन सभ्यता की सृष्टि जब कोई मनुष्य एशिया की नवीन सभ्यता का नाम लेता है, तब योरप के लोग चौकन्ने-से हो जाते हैं। वे इस बात का अनुमान भी नहीं कर सकते कि जिस सभ्यता ने आधुनिक मनुष्यों को पिशाच और पुराने जगत् को नरक बना दिया है, उसके अतिरिक्त कोई अधिकतर संपूर्ण और श्रेष्ठ सभ्यता हो सकती है या नहीं। तो भी इस सभ्यता के स्थान में एक नवीन सभ्यता का होना परम आवश्यक है; क्योंकि वे लोग चाहे जितना नाचें-कूदें या रोवें-पीटें; पर उनकी सभ्यता लुप्त होनेवाली है। उसके स्थान पर नवीन सभ्यता को स्थापित करने में क्या जापान योग दे सकता है? अपने घर में जापान इस कार्य्य के लिये क्या कुछ कर सकता है? और बाहर सारे एशिया तथा समस्त मानव-जाति के लिये भी वह क्या कुछ नहीं कर सकता? ये तीन विशाल प्रश्न हैं, और तीन देदीप्यमान कार्यक्रम ही इनके उत्तर होने चाहिए। जापान अपने घर में इस तथ्य को ढूँढ़ ले, और सबको दिखला दे कि एक ऐसी आदर्श जाति कैसे बनाई

जाती है, जिसमें दो सिद्धांत–जो आज कल सर्वत्र विभिन्न तथा कलुषित हो रहे हैं—एक साथ रक्खे जा सकते हैं, और उनमें सामंजस्य उत्पन्न किया जा सकता है, तथा उनमें राजसत्ता और प्रजासत्ता नामक दो ऐसी पृथक् शक्तियाँ भी रह सकती हैं, जिनमें विरोध का आविर्भाव तभी होता है, जब कि उनमें कोई एक शक्ति सात्त्विक गुणों से रहित हो जाती है; क्योंकि अगर कोई आदर्श राजा ईश्वर का एक विशाल स्वरूप है (नराणां च नराधिपम्), तो प्रजा भी उसी परमपिता परमेश्वर की संतान है। राजा ईश्वर की एकता को बतलाता है, और प्रजा भी उसी ईश्वर के नाना रूपों को प्रकट करती है। सच्चा प्रजातंत्र ईश्वरवाद का केवल एक दूसरा नाम है।

सब लोगों का यह विश्वास है कि ईश्वर सदा राजा के रूप में प्रकट होता है। अतएव, लोगों के इस विश्वास के द्वारा सच्चे ईश्वरवाद का क्रियात्मक साधन करके, सच्चे प्रजातंत्र का ज्ञान भी प्राप्त कीजिए; परंतु इस बात से सदा सावधान रहिए कि टेन्नो * और प्रजावर्ग के बीच में, जो एक दूसरे के अर्द्धांग हैं, कोई भ्रष्ट या अपवित्र बात बनी रह कर संसार में अंधाधुंध न मचा दे, और स्वर्ग को उसके परदे में न छिपादे। आपने शोगन को दूर हटा दिया है, और ऊपर की किरणों ने आपको प्रकाशित कर दिया है, परंतु

* टेन्नो—जापान में राजा या सम्राट् का वह भाव नहीं है, जो योरप में है। जापान में भी भारतवर्ष ही की तरह राजा ईश्वर का स्वरूप, प्रतिनिधि या अवतार समझा जाता है।

फिर भी शोगन एक दूसरे स्वरूप में और दूसरे नाम से उपस्थित हो गया है। वह अपने आपको 'लीजियन' कहता है। उसका नाम अब 'नारिकिन'* है। क्या आप कुछ सुन रहे हैं? अखिल योरप आप से पुकार-पुकारकर कह रहा है—"धन के राज्य का अंत दिवाला और अकाल है", और रूस भी चिल्ला-चिल्ला कर आपको सचेत कर रहा है—"धनाढ्य पूँजीपति लोग ही बढ़कर बोलशेविक राज्य की सृष्टि कर रहे हैं!"

जब आप स्वर्ग और पृथ्वी के उपर्युक्त दोनों भंडारों को पवित्र कर देंगे, तब आप चीन की ओर ध्यान दे सकते हैं; क्योंकि चीन की ओर देखते ही आप समझ जायँगे कि चीन के दो अलग-अलग विभाग उन्हीं दो सिद्धांतों के स्वरूप हैं, जिनको एक करना चाहिए—जिनमें समझौते से नहीं, बल्कि भाव-परिवर्तन से, एकता उत्पन्न करनी चाहिए। वे ये हैं:—दक्षिण चीन का सिद्धांत—पृथ्वी का आदर्श (भौतिक सुख), और उत्तर-चीन का सिद्धांत—स्वर्ग की आवश्यकता (आध्यात्मिक वाद)।

इस प्रकार जापान के बाहर आपका कार्य आरंभ होगा। उसका आरंभ एशिया से ही होगा। भविष्य में एशिया की जातियाँ स्वतंत्र होंगी; क्योंकि स्वतंत्रता देवी ने पृथ्वी पर अधिकार कर लिया है। अब प्रश्न केवल यही है कि आपका जापान-देश एशिया की जातियों का उद्धारक तथा नेता बनेगा, या उन स्वामियों की श्रेणी में मिल जायगा, जिनके चंगुल से वे जातियाँ छुड़ाई जायँगी। भविष्य में एशिया की जातियाँ एक हो

---

* नारिकिन—सुवर्ण-रचित मनुष्य—अर्थात धनसंपन्न पूँजीपति।

जायँगी; क्योंकि एकता भी आ रही है। क्या जापान इन जातियों को एक करनेवाला बनेगा, या वह उनमें सम्मिलित होगा जिनके बिना और जिनके विरुद्ध वे एक होंगी।

दो वर्ष पहले मैंने आपके देश से कहा था कि चीन की सहानुभूति और प्रेम प्राप्त करने के लिये वह टिंगटाऊ* चीन को वापस लौटा दे; परंतु जापान ने अभी तक ऐसा नहीं किया है। इस प्रकार की राजनीति का अवलंबन करने से चीन को भी जापान अपना नहीं बना सकेगा, और टिंगटाऊ को भी खो बैठेगा। मैं अब आप से कहता हूँ कि एशिया की एक जाति का उद्धार करने के लिये जापान मार्ग-प्रदर्शक बने, और स्वयं आगे बढ़कर कोरिया के छोटे-से देश को स्वतंत्र कर दे, उस पर से अपना अधिकार उठा ले। ऐसा होने पर सारा एशिया आपपर विश्वास करने लग जायगा, सारे एशिया में आपका नैतिक साम्राज्य स्थापित हो जायगा। अगर आपको भविष्य में राजतिलक प्राप्त करना है, तो उसके लिये आपको खर्च भी करना पड़ेगा, कुछ क़ीमत देनी होगी, और आप इसे भी याद रक्खें कि आप क़ीमत देने में जितनी ही देर करते हैं, उतनी ही क़ीमत बढ़ती जा रही है। यदि आपको इस महान पद को प्राप्त करना है, तो क्षुद्र विचारों को, तुच्छ लाभों को, और छोटे-मोटे स्वार्थों को छोड़ना पड़ेगा। अब तो बहुत बड़ी-बड़ी बातों की घड़ी आ उपस्थित हुई है। यह तो ऐहिक या भौतिक कार्य है, अभी इससे भी कहीं श्रेष्ठ, बल्कि श्रेष्ठतम, आध्यात्मिक और सर्वोत्कृष्ट पवित्र कार्य बाक़ी हैं। जब पहले आप

---

*टिंगटाऊ—चीन का एक भाग, जो इस समय जापान के अधिकार में है।

उद्धारक बन चुकेंगे, तब आप आध्यात्मिक विजेताओं और योद्धाओं के राज्य में प्रविष्ट हो जायँगे; क्योंकि उस पुण्यशील राज्य में जो विजय नहीं प्राप्त करता, वह स्वयं ही हार जाता है। ऐसा करने से आप संसार के धर्मोपदेशक बन जायँगे—और ऐसे धर्मोपदेशक बन जायँगे, जो पहिले स्वयं आदर्श बन लेते हैं, तब फिर चल कर दूसरों को शिक्षा देते हैं। दूसरे सभी उपदेशक ऐसा नहीं करते हैं। कभी-कभी आपसे ऐसा प्रस्ताव भी किया गया है कि कुछ ख़ास-ख़ास जातियों से आप बदला लें, और जो देश आपके देश के मज़दूरों आदि को अपने यहाँ नहीं घुसने देते, उनके यहाँ के धर्म-प्रचारकों को आप भी अपने यहाँ न घुसने दें। परंतु मैं आपको इसके विपरीत परामर्श देता हूँ। आप प्रत्येक धर्म को फैलने और बढ़ने का अवसर दें, और साथ ही साथ अपने धर्म को भी बढ़ने का मौक़ा दें। अगर आपके यहाँ एक क्रिश्चियन धर्मोपदेशक आवे, तो आप भी एक शिंटो, कन्फ़ूसियन, या ईसाई धर्म-प्रचारक को बाहर भेज दें। जितने पादरी जापान में बाहर से आवें, उतने ही धर्मोपदेशक आप अपने यहाँ से भी बाहर भेजें। जैसे राजनीतिक और व्यापारिक कार्यों के लिये परस्पर एक दूसरे देशों में दूत अथवा प्रतिनिधि भेजे और रक्खे जाते हैं, वैसे ही धर्म-प्रचार के लिये भी हर एक देश के धर्म-प्रचारक दूसरे देशों में स्वतंत्रतापूर्वक जाया और रहा करें। कई जातियाँ ऐसी हैं, जो आपके धर्म को नहीं जानतीं, जो अनभिज्ञता के कारण उससे घृणा करती, और घमंडी होने के कारण उसको जानने की उपेक्षा करती हैं। ऐसे लोगों को आप अपना वह धर्म सिखलाइए, जो प्रेम और आनंद से पूर्ण है,

सो जो हिंसा और खून-खराबी से खाली है, और जो ऐसा कहने का अधिकारी है कि संसार में शांति का राज्य अटल हो। आप जाकर उन लोगों को शिक्षा दीजिए, जिन्होंने स्वर्ग को बिल्कुल खाली करके वहाँ केवल ईश्वर को ही रहने दिया है, और वह उनका ईश्वर भी स्वयं शीघ्र ही आत्माओं की रात्रि (अज्ञानांधकार) में अंतर्द्धान हो जाता है। वह स्वर्ग उन देवताओं का निवास स्थान है, जो प्रकृति और मनुष्य के पूर्वज हैं। पर वे सब देवता वास्तव में एक ही हैं; क्योंकि वे सब देवता उसी एक परब्रह्म के अनेक विचार तथा अनेक रूप हैं। आप जाकर उन धर्मों को शिक्षा दीजिए, जिनकी बदौलत मनुष्यों के एकमात्र पवित्र मूलाधार परमेश्वर के नाम पर समस्त जगत् में घृणा और भय का संचार हो गया है।

उस भगवान् के नाम पर जाइए, जो अखिल जगत् में अपने पैग़ंबरों या अवतारों को भेजता है, जिसकी आत्मा हर कहीं साँस लेती है, जो सब जातियों और गोत्रों में अपने आप को प्रगट करता, और जो मनुष्य को ईश्वर बनाने के लिये युग-युगांतर में मानव-शरीर धारण करके भूतल पर अवतीर्ण होता है। जाइए; क्योंकि अब वह समय आ गया है, जब कि उस ईश्वर को प्रकट होना चाहिए। जाइए; और इस अवतार का शुभ संदेश सब जातियों को सुनाइए। ऐ अल्पसंख्यक जापान! इस विशाल संसार-भर में फैल जा, कुछ भी भय मत कर, दुष्टों के सामने विनयी और स्वर्ग का दूत बन कर निकल जा। जो भविष्य में महान विजयी अवतीर्ण होनेवाला है, तू उसका चोपदार बन जा।

चौथा प्रकरण

प्रजातंत्र (Democracy)

[बैरन गोटो के मासिक पत्र 'शिजिदाई' टोकियो में जो प्रजातंत्र-विषयक प्रश्न उठा था, उसके उत्तर में पाल रिचार्ड ने दिसंबर १९१८ में यह लेख लिखा था]

आपने मुझसे पूछा है कि योरप के महासंग्राम के पश्चात् प्रजातंत्र का सिद्धांत या भाव हम किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं? परंतु मैं चाहता हूँ कि आप इस प्रश्न को इस रूप में रक्खें— "हम सच्चे प्रजातंत्र के सिद्धांत को किस प्रकार ग्रहण कर लें, और नकली तथा झूठे प्रजातंत्र के सिद्धांत से क्योंकर छुटकारा पा जायँ ?" अथवा, इस प्रश्न का इससे भी श्रेष्ठतर और सुगमतर रूप यह हो सकता है—"मिथ्या प्रजातंत्र के भाव को पचाने और उससे सहमत होने से हम किस प्रकार बच जायँ, और इसके विपरीत इस शब्द के यथार्थ अर्थ को किस प्रकार ढूँढ़ निकालें, और उसे सबको दिखा दें ?" बस, यही मुख्य प्रश्न है, जो आपके और आपकी जाति के महत्व के योग्य है।

वास्तव में प्रजातंत्र दो प्रकार के हैं—एक सच्चा और आदर्श प्रजातंत्र, जिसको अभीतक किसी ने भी नहीं जाना है, और जिसको ढूँढ़ निकालना अभीतक बाक़ी है। और दूसरा वह प्रजातंत्र है, जो अनेक रूपों में कई आधुनिक रियासतों और राज्यों में प्रचलित है—जैसे अमेरिका, फ्रांस और रूस इत्यादि

में। इस दूसरे प्रकार के प्रजातंत्र की साधारण परिभाषा यह हो सकती है कि यह प्रणाली प्रतिनिधि-सभा (Parliamentary) और धनाढ्य-जन-व्यक्तित्व (Plutocratic individualism) की है। अर्थात्, जो आधुनिक प्रजा-राज्य-प्रणाली है, उसके अनुसार राज्य का प्रबंध कुछ ऐसे धनाढ्य पूँजीपतियों के हाथ में होता है, जो प्रजा के स्वयंभू प्रतिनिधि बन बैठते हैं। क्या इसी प्रकार की प्रजातंत्र-प्रणाली को पचाने और ग्रहण करने के लिये जापान अधीर हो रहा है? अगर ऐसा ही है, तो उसे दुबारा सचेत रहना चाहिए कि योरप के पाश्चात्य शिक्षकों के उपदेश की झटपट पूरी नक़ल उतारने के प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है। नक़ाली और भौंड़पन का कोई महत्व नहीं है, बल्कि उसमें बड़ा भारी भय है। जापान ने अभी से योरप की आधी नक़ल कर डाली है, उसका आधा स्वांग रच लिया है। यह भी आवश्यक है कि किसी जाति की पोशाक को स्वीकार करने से उस जाति के कुछ-न-कुछ विचारों को भी ग्रहण करना ही पड़ता है। योरप की टोपी, कोट, पतलून और टाई-कालर पहनने से वहाँ के थोड़े-बहुत विचार भी नक़ल उतारनेवालों के दिलों में अपना घर बना लेते हैं। किसी परदेशी का माल ख़रीदने से भी विचारों में परिवर्त्तन हुए बिना नहीं रहता; क्योंकि यह जरूरी बात है कि परदेश से आए हुए सामान के साथ-ही-साथ वहाँ के रीति-रिवाज भी आ ही पहुँचते हैं, और रीति-रिवाज के साथ वहाँ के विचार भी लगे रहते हैं। विदेशी वस्तुओं के साथ-ही-साथ कुछ-न-कुछ विदेशी मानसिक भाव भी लगा रहता है। हर एक पदार्थ के साथ उसके बनानेवाले के भाव और विचार

भी लगे रहते हैं। इसलिये, निश्चय रूप से कहना होगा कि जापान ने योरपीय पोशाक और सामान को धारण करके अपने आपको पार्लिमेंटरी शासन की ओर अग्रसर किया है, जिससे उसकी व्यवस्था में धनाढ्यों की प्रबलता हो गई है। इसमें दो दोष हैं; एक दोष तो छोटा है, पर दूसरा दोष बहुत बड़ा है। पहला तो यह है कि योरप और उसके साथ-साथ अमेरिका भी, चोटी से लेकर एड़ी तक, अपनी उन सामाजिक और राजनीतिक परिपाटियों को बदलने की धुन में लगा हुआ है, जिनका आप लोग अनुकरण कर रहे हैं। इस दशा में जिन संस्थाओं और प्रणालियों को आपने उन्नति का आदर्श समझ रक्खा है, और जिनकी आप नक़ल करते हैं, वे पाश्चात्य देशों में उन्नति-हीन और गँवारू समझी जाकर त्याग दी जायँगी। ऐसी व्यवस्था में जापान यदि योरप का निरा नक़ाल ही रहेगा, तो बड़ा भारी भय है कि उन्नति की दौड़ में वह पिछड़ जायगा, और उसकी चाल वही पुराने ढंग की रह जायगी। जिस योरप की नक़ल की जा रही है, वही जब अपना रंग-ढंग बदल देगा, तो यह निश्चय है कि नक़ल उतारनेवाला जापान फिर भी पीछे का पीछे ही रह जायगा।

जापान के नेत्रों के सामने इस विषय का एक जीता-जागता उदाहरण भी उपस्थित है। अभीसे लगभग एक अरब मनुष्यों के लिये, जो संख्या संभवतः और भी बढ़ेगी, पूँजीपतित्व हटा दिया गया है, और उसका स्थान श्रमजीवि-संघ (Labour Collectionism) ग्रहण कर रहा है। रूस इत्यादि देशों में राज्य-प्रबंध से मालदार लोगों का प्रभुत्व हटा दिया गया है, और वही

प्रभुत्व अब मजदूरों के हाथों में आ गया है। वहाँ अब पूँजी-पतियों की कोई हस्ती नहीं रही। अब वहाँ जो कुछ महत्व है, केवल श्रमजीवी लोगों ही का है; और प्रत्येक प्रांत, नगर या ग्राम की ओर से पार्लियामेंट में प्रतिनिधि भेजे जाने की प्रणाली के स्थान में प्रत्येक प्रांत के प्रबंध-कर्ताओं की सभाओं की तरफ़ से उनके चुने हुए प्रतिनिधि राज्य-परिषद् में परामर्श और योग देने के लिये भेजे जाने लगे हैं। मन-माने प्रकार से वोट प्राप्त करके कोई धनवान या जमींदार राज-सभा में नहीं घुस सकता। रूस में जो सोवियट-सरकार बनी है, उसकी रचना और उसकी नियमावली देखने से यह बात साफ़ तौरपर समझ में आजायगी कि योरप का अधिकांश भाग इस अवस्था को पहुँच गया है, और अवशिष्ट भाग भी इसी परिपाटी को ग्रहण कर लेगा।

जो कुछ हो रहा है, वह किसी कौतुक अथवा जादू द्वारा नहीं। यह परिवर्त्तन चाहे जितना क्रांतिकारक क्यों न हो, परंतु यह प्राकृतिक विकास का एक सरल और सीधा परिणाम है। इस विकास की दलील अनायास ही समझ में आ जाती है, और इसको उत्पन्न करनेवाले कारण समस्त योरप में एक समान हैं। वे ही समान कारण समस्त पाश्चात्य सभ्यता में काम कर रहे हैं।

जापान के लिये जो दूसरा गुरुतर दोष है, वह यह है कि जिस मार्ग पर वह चल रहा है, उसका अंतिम परिणाम भयानक है; तो भी वह समझता है कि दूसरों के मार्ग पर चलकर भी हम उनकी-सी दुर्दशा को प्राप्त होने से बच जायँगे। उस मार्ग पर चलने से जो दुर्दशा योरप और अमेरिका की हो रही है,

वही जापान के लिये तैयार खड़ी है। वह परिणाम इस प्रकार का है:—जब किसी भी देश के लोगों में आध्यात्मिकवाद की अपेक्षा पदार्थवाद का प्रभाव बहुत बढ़ जाता है, तब वहाँ यह जरूरी हो जाता है कि पहले तो धनी लोग, और फिर साधारण तथा दरिद्र मनुष्य (मजदूर इत्यादि) राजसत्ता को क्रम क्रम से हाथ में ले लेते हैं। जब श्रम का व्यवसाय—मजदूरी-धंधा—किसी जाति का खास पेशा, या प्रधान कार्य हो जाता है, तो धीरे-धीरे मजदूर ही मुख्य व्यक्ति बन बैठता है। जब किसी देश में रुपया स्वामी बन जाता है, तब रुपए को पैदा करनेवाला ही वहाँ का बादशाह बन जाता है। यह जरूरी बात है कि जिन लोगों पर हमारे लाभ अवलंबित रहते हैं, उनके पैरों पर एक-न-एक दिन हमें मस्तक झुकाना पड़ता है। किसी भी देश की सामूहिक संपत्ति का सहारा मजदूर (श्रमजीवी) ही है; क्योंकि वही उसको उत्पन्न करता है। अतः वह ऐसा उपयोगी होता है कि जिसके बिना समाज का किसी प्रकार काम नहीं चल सकता, और उसका परिणाम यह होता है कि वही मजदूर एक दिन सबका मालिक बन बैठता है; क्योंकि वास्तविक और सच्ची शासन-प्रणाली का यही मूल तत्त्व और यही वास्तविक उपयोगिता है कि वह अधिकाधिक-संख्यक मनुष्यों की सेवा कर सके। अंततः राज्य उसी के हाथ में रहेगा, जो अधिक-से-अधिक मनुष्यों की अधिक-से-अधिक सेवा करेगा।

जिसको आजकल के लोग सभ्यता कहते हैं, वह केवल पदार्थवाद और परिष्कृत असभ्यता की यांत्रिक समृद्धि मात्र है। उसका अंतिम, न्याय-संगत और अवश्यंभावी परिणाम

है—मजदूरों का राज्य। जापान को भली प्रकार जान लेना चाहिए कि अर्थशास्त्र की जिन बातों ने पूँजी पतियों को पैदा किया, वे ही बातें बोलशेविज्म की सृष्टि करेंगी।

इस स्पष्ट बात से मुंह मोड़ लेने से—इसकी ओर से नेत्र-मूंदने से कोई लाभ नहीं है। इस सच्ची व्यवस्था को सावधानी के साथ देख लेने और समझ लेने के लिये आँखें खोलना जरूरी है; क्योंकि नवीन युग के चिन्ह बहुत हैं, और वे स्पष्टता से दिखाई दे रहे हैं। धनवान लोगों के बच्चों के दिमाग में जो उन्नति हो रही है, वह भी इस विषय में कुछ कम महत्व नहीं रखती; उनके मस्तिष्क में क्रांतिकारक विचार जड़ जमा रहे हैं। ऐसे हजारों दृष्टांत पाए जाते हैं। एक उदाहरण लीजिए—

एक जापनी बालक ने रूस की एक महिला को देखकर कुछ दिन पूर्व कहा था—"इस स्त्री के बड़े भयानक विचार हैं"। उस बालक के अध्यापक ने पूछा—"क्या तुम इसके विचारों को इसीलिये भयानक बतलाते हो कि यह क्रांति को पसंद करती है ?" बालक ने तुरंत उत्तर दिया—"नहीं, नहीं, मैं इसे इसलिये भयानक समझता हूँ कि यह लेनिन और ट्रोस्की के विरुद्ध कहती-सुनती है, और मैं इन लोगों के विचारों को पसंद करता हूँ।" वह बालक एक महाजन का लड़का है। उसके शब्द आपको भविष्य का दिग्दर्शन करा रहे हैं। वह पूँजीपति का बालक होकर भी धनकुबेरों के परम शत्रु लेलिन और ट्रोस्की के विचारों को पसंद करता है (ऐसे ही विचार आजकल हमारे भारत के मालदारों और जमीदारों के लड़कों में पाए जाते हैं)।

भविष्य की यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसको आप लोग

पसंद नहीं करते, परंतु मुझे बतलाइए तो सही कि इसको आप टाल कैसे सकते हैं ?

कतिपय कवियों का यह स्वप्न है कि कभी न कभी भविष्य में वही पुरातन काल का शुभ दिन आ जायगा, जब न तो व्यवसाय-परायणता थी, न व्यापार-प्रधानता थी, न मजदूर अपनी आत्मा और अपनी शक्ति को पैसों के लिये बेंच देते थे। इस स्वप्न के तथ्य का तो कोई प्रश्न ही नहीं है, उस प्रचीन काल में मजदूर को—व्यवसायी को—अपनी जीविका कमानी नहीं पड़ती थी; वह जीविका को मानो भगवान का दिया हुआ प्रसाद समझता था, और जो कुछ वस्तुएँ वह अपने हाथ से बनाता था, उनको भगवान ही के अर्पण कर देता था। वह अपनी जीविका को ईश्वरदत्त समझता था। ऐसा कभी विचारता भी न था कि मेरी जीविका मेरी ही कमाई है। इस प्रकार काम-काज और उद्योग-धंधे को सब लोग आपस में भेंट या प्रसाद स्वरूप समझते थे, परंतु आज वैसा समय नहीं है। अब मनुष्य स्वतंत्र नहीं रहा। अब वह भाड़े का टट्टू है। वह मजदूरी प्राप्त करने के लिये ही परिश्रम करता है, ईश्वर के लिये नहीं। वह अब किसी ऐसे व्यक्ति के लिये अपनी शक्ति और जान लड़ाता है, जो उसको धन देता है। ऐसी दशा में भी क्या आप चाहते हैं कि मजदूर अपने हृदय में स्वार्थ-शून्य कर्तव्य को धारण करें ? यदि आप ऐसा चाहते हैं, तो पहले आप उन हिस्सेदारों और पूँजीपतियों को, जिनके संयुक्त धन से चलाए हुए कारखानों में मज़दूर काम करते हैं, पुराने आदर्श पर चलने के लिये उपदेश दीजिए; तब कदाचित् आप ऐसा संभव कर सकेंगे कि मज़दूर लोग अपने

आपको गुलाम न समझें, और स्वयं धनी बनने की लालसा छोड़ दें।

परंतु यदि ऐसी पुरानी व्यवस्था के पुनः संघटित होने की संभावना न भी हो, तो भी कई लोग ऐसा विचार करते हैं कि आगे चलकर इस तरह की और भी अधिकतर बुराइयाँ होने वाली हैं, जिन्हें, जहाँ तक हो सके, जबरदस्ती रोकनाभी आवश्यक है। परंतु उसको रोकने की अपेक्षा तो किसी ऐसी नदी को रोकना फिर भी सहज और संभव है, जो नीचे के मैदान की ओर तीव्र वेग से बहती है। उस नदी के प्रवाह को आप निस्संदेह बाँध सकेंगे, परंतु ऐसा करने से उसका वेग और भी दुर्दमनीय हो जायगा। उसके बहाव के आगे आप बाँध बँधवा दें, परंतु जल-प्रवाह तो बाँध के ऊपर तक चढ़कर उसे तोड़ डालेगा। बाँध के टूटने से जो गड़बड़ और सर्वनाश होगा, वह और भी भयंकर होगा। जीवित शक्तियों को कोई नहीं रोक सकता। आप उनको गाड़ देंगे, तो वे फिर उग निकलेंगी। आप उनको दबा देंगे, तो वे फिर भभक कर फूट निकलेंगी। संसार में किसी भी पुलिस में विचारों के प्रवाह को रोकने की शक्ति नहीं है, किसी भी नौकरशाही के कानून उस स्वतंत्र स्वर्ग तक नहीं पहुँच सकते, जहाँ से वे अजेय शक्तियाँ जन-समुदाय के मस्तिष्क और हृदय में तीव्र वेग से अवतीर्ण होती हैं। किसी प्रकार की व्यवस्था को बहुत ही थोड़े समय में और निश्चित रूप से पूर्ण कराने का यदि कोई उपाय है, तो वह यही है कि बल-प्रयोग से उसका विरोध किया जाय। दमन-नीति के प्रयोग से कोई भी शक्ति रोकी नहीं जा सकती। यह वही सड़क

है, जिस पर रूस की ज़ारशाही चली थी। उस चाल का अनु-करण आप न करें—उस सड़क पर न चलें।

फिर भी मान लिया जाय कि जो भाव आपको अरुचिकर हैं, उनको रोकने के लिये आप बल-प्रयोग से प्रयत्न करेंगे; पर परिणाम क्या होगा ? परिणाम यह होगा कि जब आप अपनी फौजों को जन-समुदाय की प्रवृत्ति-धारा से युद्ध करने के लिये भेजेंगे, तो आप सावधानता के साथ स्मरण रक्खें कि आपकी भेजी हुई फौज कदाचित् बाहरी विजय की दुंदुभी बजाते हुए आपके पास लौट आवे; परंतु अंदर से तो आपकी फौज उसी भाव से परास्त होकर लौटेगी, जिस भाव का ध्वंस करने के लिये वह ललकार कर भेजी गई थी, जिस रंग को फीका करने के लिये सैनिकों की तैनाती हुई थी, वही रङ्ग उनके हृदयों पर भी चढ़ जावेगा। इस व्यवस्था की आप क्या चिकित्सा कर सकेंगे ?

तो फिर इस व्यवस्था से बचने का क्या कोई उपाय ही नहीं है ? हाँ, एक उपाय अवश्य है। पीछे हटने या विमुख होने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि हर हालत में शीघ्रता और निर्भीकता से आगे ही बढ़ना चाहिए। उनसे दूर भागना या लड़ना-भिड़ना उपादेय मार्ग नहीं है; बल्कि उनकी सेवा करना ही लाभप्रद है। यदि आप चाहते हैं कि भविष्य का आदर्श आपके लिये शत्रु और भयंकर न बन जाय, तो आप उससे सप्रेम हाथ मिलाइए, उसको मित्र बनाइए। यदि आप चाहते हैं कि भविष्य आपको नष्ट न कर दे, तो उस भविष्य का निर्माण आप स्वयं करें। जल-धाराओं के बहाव के लिये आप

प्रवाह-क्षेत्र बना लीजिए, ताकि तहस-नहस करने के बदले वे धरती को सींचकर उपजाऊ बना दें।

नवीन शक्तियों को जीतने के लिये यह आवश्यक है कि आप उनके मार्ग-दर्शक बन जायँ, और मार्ग-दर्शक बनने के लिये आपको उनकी सहायता करनी पड़ेगी। और बातों के साथ-साथ आप उनके लिये भी स्थान बनाएँ। आज आप मजदूरों और साधारण जन-समुदाय के लाभों के लिये सुप्रबंध कर डालिए, ताकि भविष्य में वे अपने लाभों और स्वत्वों की रक्षा के लिये आपके विरुद्ध खड़े न हो सकें। न्याय को सार्वत्रिक और सर्वान्तर्गत बना लें, ताकि भविष्य में उसके लिये माँगें और उम्मदारियाँ और भी उग्र होकर, चरम सीमा तक न पहुँच जायँ।

सारांश यह कि स्वयं अपनी और दूसरों की लोभमयी इच्छाओं के दबाने के लिये आप आदर्श के सेवक और सहायक बन जायँ, नाश को आसानी से प्राप्त करानेवाले कुमार्गों से दूर हट जायँ, दूसरों का अनुकरण न करें, किंतु नवीन आविष्कार करें। आप नूतनता के सच्चे उदाहरण बनें, नक़ाल या बहुरूपिया न बनें। मिथ्या प्रजातंत्र का पाठ अभ्यस्त करना छोड़कर सबको सच्चे प्रजातंत्र का पाठ पढ़ावें। किंतु उसको ढूँढ़ निकालने के लिये पहले आप अपनी वर्त्तमान अवस्था से और भी अधिक उन्नत हों। जबतक आप स्वयं स्वार्थपरता से ऊपर न उठेंगे, तबतक सच्चे प्रजातंत्र को आप नहीं ढूँढ़ सकेंगे।

वास्तविक प्रजातंत्र कोई प्रणाली नहीं है, बल्कि एक भाव है। यह भाव नियमों, सूत्रों, संस्थाओं और प्रतिनिधि-सभाओं पर अवलंबित नहीं है। जहाँ प्रजातंत्र है, वहाँ भी एक पुरुष की

बादशाही चल सकती है। जहाँ बादशाही है, वहाँ प्रजा-सत्ता भी राज्य-प्रबंध में खूब भाग ले सकती है। सम्राटों और बादशाहों की अपेक्षा प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्रों के राष्ट्रपति अधिकतर स्वेच्छा-चारी और उच्छृंखल हो सकते हैं। पुरातन काल में यद्यपि यूनान में प्रजातंत्र था, तथापि वहाँ पर रोम के बादशाही राज्य की अपेक्षा गुलाम-फ़रोशी (दास-विक्रय-प्रथा) अधिकतर प्रचलित थी।

इस प्रकार के अनेकानेक अद्भुत उदाहरण हैं। इंगलैंड में बहुत सी प्रजा-सत्तात्मक संस्थाएँ हैं; परंतु उनके होते हुए भी वहाँ के थोड़े-से सरदार और रईस ठीक उसी प्रकार देश की समस्त भूमि पर अपना अधिकार जमाए बैठे हैं, जिस प्रकार राज्य-क्रांति के पूर्व रूस में रईसों का अधिकार था। इंगलैंड की राजधानी लंडन में एक आदर्श और संसार की प्रतिनिधि-सभा अथवा दूसरी सभी बड़ी-बड़ी राजधानियों में एक-एक पार्लियामेंट हैं, परंतु उन सभी राजधानियों में सबसे अधिक दरिद्रता और कष्ट विद्यमान हैं। इंगलैंड के प्रधान मंत्री श्रीयुत लायड जॉर्ज ने कुछ दिन पहले प्रकट किया था कि योरप के महा-संग्राम में भाग लेनेवाले सब देशों की अपेक्षा इंगलैंड ही में अयोग्य और हीन पुरुषों की संख्या अधिक है।

सच्चा प्रजातंत्र सबसे उच्च पदाधिकारियों की वक्तृताओं का प्रजातंत्र नहीं है। अमेरिका के किसी मालदार आसामी ने कुछ दिन पहले रूस में यात्रा करते समय समझा था कि "रूस के भूखे मजदूरों और कृषकों को मैं राज्य-च्युत जार की स्पेशल ट्रेन से या राजमहलों की अटारियों पर से प्रजातंत्र की शिक्षा दे

सकता हूँ"; परंतु सच पूछिए तो ऐसा प्रजातंत्र सच्चा प्रजातंत्र नहीं है। सच्चा प्रजातंत्र वह भी नहीं है, जिसमें प्रतिनिधियों के चुनाव के समय वोट (सम्मतियाँ) प्राप्त करने के हेतु दलबंदियों के तमाशे देखे जाते हैं। आज के गुलाम को इस प्रकार का धोका देना कि—उसके देश में जो पाँच-छ सौ बुद्धिमान्, जाल-साज़ और लुटेरे राज्य-परिषद् में बैठने को तैयार हो रहे हैं, उनमें से किसी भी एक के अनुकूल या प्रतिकूल सम्मति दे देने को वह स्वतंत्र है—कदापि वास्तविक प्रजातंत्र नहीं है। बस, इतने ही से भोलाभाला जन-समुदाय अपने आपको स्वतंत्र समझ लेता है। किंतु जहाँ बहुमत का अत्याचार होता है, वहाँ स्वतंत्रता नहीं रह सकती। मान लिया जाय कि एक ग्राम में ५०० मनुष्य हैं, वहाँ पर स्वराज्य है; किसी कार्य के लिये स्वार्थ-पूर्ण वासनाओं की प्रेरणा से ४०० मनुष्य एक राय के हैं; पर अवशिष्ट विचारे १०० उनके विरुद्ध हैं; बहुसंख्यक मत के अनुसार वे ४०० जीत गए और सब पर एक अन्याय हो गया। कहिए, ऐसा स्वराज्य क्या सच्चा स्वराज्य है? एक गुमनाम स्वेच्छाचारी राज्य या एक चुनाव-प्रथावाला राज्य, जिसमें धनी लोग चाहे जैसे वोट लेकर घुस सकते हों, क्या सच्चा प्रजातंत्र कहला सकता है?

सच्चा प्रजातंत्र—अर्थात् वास्तविक स्वातंत्र्य—वह है, जो मनुष्य को दासता के जटिल बंधनों से छुड़ाता है—जो उसको महान, उन्नत, सुंदर और विशेष आनंदमय बनाता है। अमेरिका के सच्चे स्वातंत्र्य-प्रेमी महात्मा इमरसन (Emerson) ने कहा था कि "हम जिसको स्थापित करना चाहते हैं, वह इस पृथ्वी के देवता-

गण का राज्य है।" अर्थात् पृथ्वी पर जो देवता-तुल्य, निष्कपट, निर्लोभी और निरभिमानी मनुष्य हैं, वे जिस राज्य-परिषद् में बैठें, वही वास्तविक प्रजातंत्र हो सकता है, और उसीको स्थापित करना हमारा ध्येय होना चाहिए।"

सच्चा प्रजातंत्र वह होगा, जिसमें छोटे लोग अपने को बड़े समझेंगे और बड़े लोग अपने को छोटा समझकर संतोष करेंगे, जिसमें बड़े लोग छोटे लोगों के लिये उदाहरण बनेंगे, जिसमें सबसे बड़े लोग अत्यंत निर्लोभी और गरीब बने रहेंगे, जिसमें सम्राट् भी अत्यंत हीनता और दीनता को ही अपनी शोभा समझेगा, जिसमें बड़े लोग गरीबों का इतनी प्रबलता से पक्ष लेंगे कि उनके दुःख और दारिद्र्य को आप ही झेल लेंगे, पर उनको किसी प्रकार का कष्ट न होने देंगे। ऐसी दशा में गरीब व्यवसायी और श्रम-जीवी किसी भी प्रकार की क्रांति नहीं उत्पन्न करेंगे, छोटे-बड़ों का अंतर नाममात्र के लिये रह जायगा।

आपके सम्राट् मेइजी का राज्य वास्तविक प्रजातंत्र था। उस राज्य में प्रजा की बेड़ियाँ कट गईं। उस राज्य में पहले-पहल अज्ञान के बंधन तोड़े गए थे। उस सम्राट् ने प्रजा के सब प्रकार के बोझ को उदारतापूर्वक अपने ऊपर ले लिया था। अपनी प्रजा के लिये वह कहा करते थे, जब रात में बहुत देर तक बर्फ पर चलते हुए बिचारे गरीब मिहनत कर रहे हैं, तब मैं संध्या समय आग के पास बैठकर भूख का अनुभव कैसे कर सकता हूँ? मेरी प्रजा किस कष्ट से अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर रही है, यही विचार घन-घटा की नाईं मेरे ऊपर सदैव छाए रहते हैं। मुझे प्रजा-राज्य के आवश्यक उपर्युक्त कथन में सौन्दर्य है।

जब प्रजा-राज्य केवल नाममात्र के लिये नहीं, पर वास्तव में एक पूज्यास्पद और आदरणीय कचहरी या आफिस होता है; जब स्वयं प्रजा अपने राजा का विशाल एवं पवित्र कोष मानी जाती है, जब रियासत का पहला क़ानून ऐसा चाहता है कि सब कार्यों का संचालन प्रजा की सम्मति द्वारा होना चाहिए, तभी वास्तविक प्रजा-राज्य स्थापित या स्थिर होता है।

परंतु हमें देखना चाहिए कि प्रजा की सम्मति क्या चीज़ है। प्रजा की सम्मति उत्तेजित जन-समुदाय की चिल्लाहट नहीं हो सकती। कितने लोग अपने निजी लाभों के लिये कई बातों को उलटा-सीधा बनाकर असत्य रीति से प्रकट करके वृथा हल्ला मचा दिया करते हैं। ऐसी मिथ्या हाय-हाय सार्वजनिक सम्मति नहीं कही जा सकती। प्रजा की सच्ची सम्मति तो लोगों के हृदय और आत्मा में रहा करती है। जो महात्मा अपने को भूल जाते हैं, वे ही उस सम्मति को जान सकते और उसकी सेवा कर सकते हैं। ऐसे लोगों की सम्मति, जिन्होंने अपनी निजी दलबंदी की स्वार्थ-पूर्ति के लिये राजनीति को एक व्यवसाय बना लिया है, सार्वजनिक सम्मति नहीं कही जा सकती।

व्यक्तिगत शक्तियों का संयुक्त आत्मा के लिये और संयुक्त शक्ति का व्यक्तिगत आत्माओं के लिये जो पारस्परिक आदर-भाव होना चाहिए, वही वास्तविक प्रजा-राज्य है। व्यक्तित्व या समूहत्व प्रजा-राज्य नहीं हो सकता, जिस राज्य में हर एक मनुष्य अपने स्वार्थ से प्रेरित, या कोई दल अपने निजी लाभों के लिये उत्तेजित, हो रहा है; वह राज्य प्रजा-सत्तात्मक नहीं कहला सकता।

किसी देश में चाहे सम्राट् राज्य करता हो या बहुमत, वह प्रजा-राज्य नहीं कहला सकता। सच्चा राज्य वह है, जिसमें केवल वास्तविक प्रजातंत्र के भाव ही सुरक्षित रक्खे जाते हैं, और जिसमें से ऐसे झूठे राजा बाहर निकाल दिए जाते हैं, जो केवल नष्ट करने योग्य बातों (अत्याचारों) से ही मैत्री करते हैं, और जो ईश्वरीय इच्छा के चिन्ह नहीं रह जाते।

सच्चा प्रजातंत्र केवल झूठे बड़प्पन को दूर करता और वास्तविक सत्पुरुषों को उत्पन्न करता है। यह केवल अपने दुष्ट स्वामियों को अलग करता है, जो लोगों के गुलाम नहीं, बल्कि उनके खुशामदी और टुकड़ेखोर भी हैं। जब लोगों के मन में ऐसे दुष्ट मनुष्यों के प्रति घृणा उत्पन्न होती है और उनकी आत्मा क्षुब्ध हो उठती है, तब वही क्षोभ उभड़ कर ऐसे लोगों का नाश करता है। वास्तविक प्रजातंत्र में न्याय और सत्य का ही राज्य रहता है। वहाँ बड़े-बड़े परस्पर-विरोधी विचारों में भी सामंजस्य उत्पन्न होता है और वे आपस में मेल खा जाते हैं। स्वतंत्रता एकता की सहचरी हो जाती है। निम्न श्रेणी का कट्टर-पन और उच्च श्रेणी का आदर्शवाद आपस में संपूर्णतः मिल जाते हैं। प्रजा के वास्तविक स्वत्व और राजा के वास्तविक स्वत्व एक हो जाते हैं। इसमें स्वर्ग और पृथ्वी एक-से हो जाते हैं।

परंतु ऐसा प्रजातंत्र है कहाँ? हम इसे कहाँ पा सकते हैं? अभी तो वह इस भूतल पर कहीं भी नहीं है। यही कारण है कि सब जातियों में भारी गड़बड़ मच रही है। इसी गोलमाल में सच्चे पुरुष प्रजातंत्र को ढूँढ़ते हुए भटक रहे हैं। किंतु इसी गड़-बड़ी के अंदर से अंत में सच्चा प्रजातंत्र उत्पन्न भी होगा।

क्या आप भी दूसरों की तरह इस गड़बड़ या दलदल में फँसने से बचना चाहते हैं ? अगर बचना चाहते हैं, तो फिर उन कारणों पर विचार कीजिए, जिनसे और लोग इस गड़बड़ी में फँसे हुए हैं। उनके स्वार्थमय विचार और अन्याय-पूर्ण कार्य ही उनको फँसाने के कारण थे। उन्होंने संसार-भर को अधिकृत करने का लोभ किया और अपनी आत्मा तक को शैतान के हवाले कर डाला।

ऐ जापान ! उनकी नक़ल मत कर, वल्कि तू स्वयं अपने ही में अपनी आत्मा और अपने ईश्वर को फिर ढूँढ़ ले। अपनी आत्मा के ऊँचे विचार का फिर से ज्ञान प्राप्त कर, और अपने सच्चे धार्मिक कर्त्तव्य तथा उद्देश्य का पता लगा, वह धार्मिक कर्त्तव्य और उद्देश्य पूरा कर, एशिया का उद्धार कर, उसकी जातियों को सुखी बना, यही तेरा काम है। ऐसा करने से तू स्वयं सुखी हो जायगा। तू सच्ची स्वतंत्रता को जान जायगा। जो कुछ तू दूसरों के लिये करेगा, वही तेरे लिये भी सिद्ध हो जायगा। तेरे बाहर के कार्यों का, तेरे पर-राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का साक्षात् प्रतिबिंब तेरे अंतर्गत परिवर्त्तनों में झलक उठेगा। जैसी सहानुभूति, स्नेह और आदर तू दूसरे देशों के प्रति दिखलावेगा, ठीक वैसे ही भाव तेरे प्रति लोगों में उत्पन्न हो जायँगे। तेरे पर-राष्ट्रीय कर्मों के महत्त्व और सौंदर्य तुझ पर उतर आवेंगे और तुझमें सर्व-संपन्नता की स्थापना कर देंगे।

ऐ जापान ! तुझे जो कुछ अन्य देशों के लिये करना है, उसे कर। फिर तो स्वयं तेरे अंदर अंधकार और क्रोध नहीं टिक सकते!

पाँचवाँ प्रकरण

भावी मनुष्य

[यह वक्तृता टोकियो में डो-टेंपल् के वार्षिकोत्सव में, २० एप्रिल, सन् १९१९, को दी गई थी]

इस संसार में जहाँ सब कुछ परिवर्तनशील है, जहाँ सर्वत्र अनंत का वासस्थान है, जहाँ अनंत का कुछ-न-कुछ अंश भी निवास करता है, जहाँ आदर्श का घर है, वहाँ अभी से कुछ-न-कुछ भविष्य का अंश उत्पन्न होता है। प्रत्येक देव-मंदिर मनुष्य उस पवित्र नगर (ईश्वर) का एक भवन है, जो स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतीर्ण होता है। इसलिये यहाँ, इस मंदिर में, इससे भी महान उस भावी महानगर को मैं नमस्कार करता हूँ। इस सम्मेलन के द्वारा मैं भविष्य के मनुष्यों को प्रणाम करता हूँ।

इसी देव-मंदिर में मैं उस महात्मा पुरुष को भी प्रणाम करता हूँ, जो इसका केंद्र, इसकी आत्मा, इसका प्रकाश है, और जो इस भविष्य को तैयार कर रहा है। क्या आप लोग जानते हैं कि ईश्वर का वरपुत्र कौन है? वही मनुष्य ईश्वर का संदेश-वाहक है, जिसको पवित्र भविष्य अपना दूत बनाता है, अपना एलची तथा अपना चोबदार नियत करता है, जिसमें और जिसके द्वारा भविष्य पहले ही से अवतीर्ण होता है। वह बेचारा ग़रीब वही मनुष्य है, जिसकी आत्मा विघ्न-बाधाओं और

प्रतिघातों से बने हुए इस वर्त्तमानकाल के मध्य में, भविष्य का संदेश प्राप्त करने के लिये, कभी-कभी व्याकुल हो उठती है; क्योंकि उसी भविष्य के शब्द के द्वारा इस भूतल पर युग-युगांतर से सृष्टि आदि का रहस्योद्घाटन, मानव-जातियों की रचना का कौतुक, पुरानी जातियों का पुनरुत्थान और नवीन जातियों का जन्म आदि संपन्न होते रहे हैं। जहाँ कहीं भी महात्मा पुरुष हैं, वहीं, भविष्य में आनेवाला अवतारी पुरुष, शक्ति-रूप में, बीजवत् विद्यमान है।

उस भावी पुरुष के लिये, उस अवतार के विषय में, क्या कहा जाय? उसका विचार भी क्योंकर किया जाय? वह तो हमसे ऊपर है, परे है, पारंगत है। परंतु उसके विषय में हम 'नहीं' भी कैसे कह सकते हैं? क्योंकि अगणित काल से उसके आगमन की आशा की गई है। सब जातियों ने उसकी प्रतीक्षा की है। सब भविष्यद्वक्ताओं और पैग़ंबरों ने उसके अवतार की घोषणा की है। समस्त शताब्दियों ने उसे संपन्न किया है। आधुनिक मनुष्य पृथ्वी का सर्वोत्कृष्ट पुत्र नहीं है। वर्त्तमान काल का मनुष्य, सभ्य मनुष्य, एक दूसरे को हड़पनेवाला जातियों का मनुष्य, रक्तपात-प्रिय मनुष्य, स्वर्ग का अंतिम और सच्चा पुत्र नहीं है। वह तो शायद सर्वोत्कृष्ट व्याघ्र है, न कि सर्वोत्तम मनुष्य। यह वह ग़रीब नहीं है, जिसके लिये अखिल सृष्टि व्याकुल हो कर आह भर रही है। यह वह मनुष्य नहीं है, जिसके लिये सृष्टि प्रसव-वेदना सहन कर रही है।

वह अभी आया नहीं। परंतु अब आवेगा। अभी तो वह नहीं आया है, किंतु आ रहा है। मनुष्यों के हृदय से, जन-

समूह के अभ्यंतर से, आज कल की तरह, क्या कभी व्यथा की भयावह चिल्लाहट निकली थी? इस संसार की समस्त जातियाँ अपने मुक्तिदाता को पुकार रही हैं। और, यह वही मुक्तिदाता है, जो भविष्य में आनेवाला है। क्या आप लोग नहीं देखते हैं कि पृथ्वी काँप रही है—इसकी गुफाएँ तक हिल गई हैं? इसीलिये कि वह आ रहा है। यह उसका राजसी पदार्पण है, जो भूतल को हिला रहा है। क्या आप नहीं देखते हैं कि सब कुछ नष्ट होकर नवीन हो रहा है? इसीलिये कि वह आनेवाला है। जिस पर उसकी छाप नहीं लगी है, जो उसके शुभागमन में अड़चन के समान है, प्रतिघात स्पष्ट बता रहा है कि वह अवश्यमेव नष्ट होगा।

सदैव से—पुरातन काल से ही—ऐसा हुआ है कि जब कभी परब्रह्म परमात्मा मानव-शरीर में अवतीर्ण होता है, तब उसके शुभागमन के पूर्व प्रचंड वायु और पवित्रकारी अग्नि की उत्पत्ति होती है, फिर पीछे मधुर मंद वायु चलने लगती है। मनुष्य-हृदय में अवतीर्ण होनेवाले उस पवित्रात्मा की श्वास-वायु विस्तृत हो जाती है। नवयुग के पदार्पण से पहले नाश, पुनर्जन्म के पहले मृत्यु, प्रकाश के पहले अंधकार, नवीन संसार और नवीन आकाश तथा नवीन नक्षत्रों के उदय से पहले अस्त-व्यस्त और गोलमाल सदैव से होते आए हैं। जितनी ही अधिक गड़बड़ और अव्यवस्था होती है, अवतार भी उतना ही अधिक अद्भुत और महान् होता है। इसको देखते हुए क्या निःय भयानक और आश्चर्यजनक नहीं है?

उसी प्रकार आज भी एक बार फिर इस संसार के गाल-

माल और क्लेश उस पवित्र राज्य और उस सम्राट् का आवाहन कर रहे हैं; परंतु जगत् में ऐसे मनुष्य, ऐसी जातियाँ और ऐसी सरकारें भी हैं, जो चाहती हैं कि ऐसा न हो। ऐसी सरकारें और ऐसे लोग यह नहीं समझते कि यह काम होकर ही रहेगा। वे आगे बढ़कर नहीं, वरिक पीछे हटकर अपनी रक्षा करना चाहते हैं। प्रभात की ओर न बढ़कर वे अस्त होते हुए सूर्य के पीछे दौड़ते हैं; क्योंकि उज्ज्वल भविष्य में उनका कोई विश्वास नहीं है। जो आनेवाला है, उससे वे भय खाते हैं। वे "भविष्य" का तनिक विचार न कर, और "वर्त्तमान" में रत न होकर, "भूत" के साथ दृढ़ता से चिपट रहे हैं। वे ईश्वर से प्रार्थना भी करते हैं, और साथ ही उससे विरोध भी करते हैं। वे तूफ़ान पर शक्ति से प्रभुत्व प्राप्त करना, विजली और बादल की कड़क और गरज को बल से बंद करना, शक्तियों के बढ़ाव पर अफ़सरी जमाना, और उमड़े हुए समुद्र को आगे न बढ़ने की आज्ञा देना चाहते हैं। परंतु समुद्र आगे बढ़ता ही चला जाता है, और उनको बहाए लिए जा रहा है। वे समझते हैं कि यह पृथ्वी हमारी स्वार्थमयी वासनाओं की संतुष्टि के लिये ही रची गई है। परंतु उनको स्मरण रखना चाहिए कि यह पृथ्वी भगवान् के प्रकट होने के लिये, नवीन महापुरुष के आगमन के लिये, बनी है।

उस आनेवाले महात्मा के संबंध में हमें यह मानना पड़ेगा कि जैसा हम चाहते हैं, वैसा वह नहीं होगा। संभव है, जैसे कुछ हम हैं, उससे वह नितांत भिन्न हो। आधुनिक मनुष्य से शायद वह उलटा हो। आजकल मनुष्य जितना बड़ा गुलाम है,

वह आनेवाला दिव्य पुरुष उतना ही बड़ा स्वतंत्र होगा। आधुनिक मनुष्य केवल शक्ति प्राप्त करने की वासना का गुलाम है; क्योंकि वह निर्बल है। वह धन की वासना का दास है; क्योंकि ग़रीब है। परंतु वह भावी मनुष्य, भविष्य का वह दिव्य अवतार, शस्त्र-विहीन होने पर भी पूर्ण शक्तिमान् होगा, लूटे जाने पर भी धनाढ्य होगा। उसे दूसरों को लूटने की आवश्यकता न होगी; क्योंकि वह स्वयं सर्व-संपन्न होगा। उसको बाहरी और दिखाऊ बल की जरूरत न होगी; क्योंकि वह संपूर्ण शक्ति को अपने अंदर ही धारण करेगा।

आधुनिक मनुष्य विज्ञान (Science) में विश्वास रखता है; क्योंकि वह वास्तव में अज्ञानी है। परिवर्तनशील विचार की अशुद्धियों का वह गुलाम बन रहा है। परंतु आनेवाला मनुष्य सर्व प्रकार के अज्ञान से विमुक्त होगा। वह अशुद्धियों को दूर करेगा; क्योंकि उसका जीवन सत्यता और शुद्धता से भरपूर होगा। वह अनंत ज्ञान का भंडार रहेगा; क्योंकि वह आध्यात्मिक ज्ञान से प्रकाशित स्वर्ग में—मानसिक स्वर्ग से भी अधिक श्रेष्ट आध्यात्मिक स्वर्ग में—विचरण करेगा। क्या वह आपके महात्माओं का बतलाया हुआ वही 'Mei toku' नहीं है, जो संपूर्ण गुणों और प्रकाश का आधार है? वह निस्सार थोथे शब्दों के कोलाहल में नहीं, बल्कि शांतिपूर्ण मौनावस्था में रहेगा। जब आधुनिक मनुष्य ऐहिक नियमों का परिपालन करता है, तब वह अपने को बड़ा पुण्यवान् समझता है; परंतु भविष्य में आनेवाला दिव्य पुरुष पुण्यवान् रहने के लिये स्वतंत्र होगा, बाहरी बंधनों से और सीमाबद्ध प्रणालियों से

बिल्कुल स्वतंत्र होगा। वह एक ऐसे श्रेष्ठ नियम का पालन करने में स्वतंत्र रहेगा कि दूसरे सहन भी नहीं कर सकेंगे। परंतु वह इसको स्वयं अपने अस्तित्व से भी ऊँचा रक्खेगा; क्योंकि जो कुछ एक साधारण मनुष्य को अच्छा प्रतीत होता है, वह उसको पाप दिखलाई देगा, और जो कुछ पाप होगा, उसको वह एक श्रेष्ठतर पुण्य में परिणत कर डालेगा।

आधुनिक मनुष्य जब कभी किसी सांप्रदायिक धर्म के अनुसार अपने मनोनीत धर्म का पालन करता है, तब वह अपने को धार्मिक समझता है, परंतु धर्म तो केवल मार्ग है। शिखर पर मार्ग कैसे हो सकते हैं? मार्ग तो नीचे और बराबर की जमीन में होते हैं। जब कोई शिखर ही पर पहुँच गया, तब वहाँ कौन-सा मार्ग चलने को बाक़ी रह जायगा? मार्ग तो नीचे ही छूट गए। आनेवाला दिव्य पुरुष किसी विशिष्ट संप्रदाय या धर्म-विशेष का अनुयायी नहीं बनेगा। वह सब धर्मों को, बल्कि उनके अतिरिक्त कुछ और भी, धारण किए हुए होगा; क्योंकि स्वर्ग के सब स्थानों को देख चुकने के कारण वह संसार के समस्त मार्गों अथवा पंथों को समझ लेगा। वह वेदों के द्वारा प्रचारित अद्वैत के रहस्य में, प्रकृति और पुरुष तथा आत्मा की शक्तियों की समानता में, प्रविष्ट हो जायगा। शिंटो-धर्म के द्वारा वह देवताओं और पितरों के स्वर्गीय अप्सरा-लोक में तथा ब्रह्म के अगाध आनंद में निमग्न हो जायगा। बौद्ध-धर्म के द्वारा वह आत्म-निर्वाण की महती शांति और सर्वभूत के साथ स्वार्थ-शून्य प्रेम को प्राप्त हो जायगा। इसलाम-धर्म के द्वारा खुदा के बंदों के विश्वास और आज्ञा-पालन की संपूर्णता को पहुँच जायगा।

देवों-धर्म्म के द्वारा महान देवत्व में परिणत हो जायगा। ईसाई-धर्म के द्वारा अवतार के शरीर धारण करने के अनुपम और अत्युत्तम मर्म को समझ लेगा।

इन सांसारिक धर्मों के द्वारा—इनसे परे, इनके उस पार, इनके ऊपर—अप्रमेय और अनंत ब्रह्म के धर्म में वह निवास करेगा। सकल भुवनों में, प्रकाश और अंधकार के समस्त लोकों में (क्योंकि वे सब ईश्वर के हैं), आकाश के सारे बाग़-बगीचों में, नीचे और ऊपर के सब स्वर्गों में, वह एक देव-बालक, दिव्य शिशु की नाईं, स्वतंत्रता के साथ क्रीड़ा करेगा—रमण करेगा। स्वयं नरक अपनी छाती पर माता की नाईं उसको झूलने में झुलावेगा। वह जीवन का स्वामी मृत्यु का प्रभु है; क्योंकि वह नित्यता को जानता है। वह स्वर्ग और पृथ्वी दोनों ही का नागरिक है। जैसे वह मनुष्यों के बीच में चलता है, वैसे ही देवगण के मध्य में भी विचरण करता है। वही इस जगत् का स्वामी तथा सेवक दोनों होगा।

परंतु उसका ध्यान क्यों किया जाय? उसका क्यों वर्णन किया जाय? ऐ आधुनिक समय के मनुष्यो! अगर तुम भविष्य के मनुष्य को जानना चाहते हो, तो तुम स्वयं ही वह भावी मनुष्य बन जाओ; क्योंकि वह तो अभी से विद्यमान है। यद्यपि वह अदृश्य है, तथापि तुम्हारे सन्निकट ही वर्त्तमान है। उसके सामने हृदय खोलकर रख दो। वह एक ऐसी आत्मा है, जो सब पर प्रकाश डाल रही है, और इस संसार में किसी व्यक्ति-विशेष अथवा जातीय-संघ द्वारा देह धारण करके अवतीर्ण होना चाहती है; क्योंकि जो भावी पुरुष अवतार लेनेवाला है,

वह किसी एक ही व्यक्ति के रूप में अवतीर्ण नहीं हो सकता। एक व्यक्ति अपने आपमें परमात्मा के संपूर्ण प्रकाश और गुण-भंडार को क़ैद नहीं कर सकता। उसकी समस्त कांति और उज्ज्वलता के फूट पड़ने के लिये आत्माओं के एक समूह की आवश्यकता है। उस अवतार के अवतरित होने के लिये एक कुटुंब की, एक चुनी हुई श्रेष्ठ जाति की, जरूरत है। वही जाति जापान बन जाय।

भविष्य काल की वह आत्मा, भावी नवीन पुरुष की वह दिव्य आत्मा, आज की इस सभा के जन-समूह पर मँड़रा रही है। उसके शुभागमन के लिये अपने द्वार खोल दो। तुम्हारी जापानी जाति पर वह पवित्र आत्मा मँड़रा रही है, अपने ऊपर उसका साम्राज्य स्थापित होने दो।

छठा प्रकरण

स्वर्ग के पुत्र

(यह व्याख्यान टोकियो में १९१७ के जून मास में दिया गया था)

संसार की सब जातियों में कुछ ऐसे मनुष्य हैं, जो सर्व-साधारण के तुल्य नहीं होते। निस्संदेह उनकी आकृति या रंग-रूप में कोई अंतर नहीं होता, तो भी वे जन-साधारण से उतने ही भिन्न होते हैं जितने स्वर्ग के प्रकाश और आनंद मर्त्यलोक के अंधकार और दुख से; क्योंकि उनमें उस प्रकाश का आनंद और उस आनंद का प्रकाश रहता है। संसार के पुत्रों में वे ही स्वर्ग के पुत्र हैं।

उनमें अधिकांश को कोई नहीं जानता। वे उन प्रकाश-पूर्ण स्थानों में निवास करते हैं, जिनको जन-साधारण ढूँढ़ते-फिरते और जिनके अदृश्य गुप्त द्वारों की तलाश में ठोकरें खाते और भटकते फिरते हैं। वे स्वर्ग-पुत्र उन सब बातों को समझते हैं, जिनसे सर्व-साधारण बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। वे वास्तविक आदर्श जीवन बिताते—जीवन के उन्नत सत्य पर आचरण करते हैं। जब तक कोई उस पथ पर न चले, वास्तव में उन्हें वह कैसे जान सकता है? उनके पास वह वस्तु है, जिसको प्राप्त करने के लिये लोग आकांक्षा रखते हैं, और जिसे तबतक कोई नहीं पा सकता, जबतक उसके मनमें किसी प्रकार की आकांक्षा

हो। वह वस्तु जीवन का परम आनंद है; क्योंकि वास्तव में जिसमें तृष्णा नहीं रहती, उसके लिये समस्त जीवन आनंद ही आनंद है।

ऐसे स्वर्ग-पुत्र कभी-कभी आपस में भी एक दूसरे को नहीं पहचानते। वे जगत्-भर में फैले हुए हैं। कभी-कभी उनमें से कोई दो परस्पर मिल जाते हैं, और फ़ौरन एक दूसरे को ताड़ जाते हैं। परंतु साधारणतः मनुष्य-समुदाय के बीच में वे पृथक्-पृथक् रहते हैं। इस प्रकार वे यद्यपि विभक्त हैं—पृथक् हैं, तथापि दूसरे प्रकार से वे सब एक हैं; क्योंकि उनका जीवन एकता "एकोऽहं द्वितीयो नास्ति" का ज्ञान है, और यह पूर्ण एकता ही उनको सब के निकटवर्त्ती बनाती है। वे दूर-दूर रहते हुए भी एक ही जगह रहते हैं। संसार उनके लिये एकांत स्थान है। एकांत ही उनका अपना संसार है, और जन-समुदाय से पृथक् रहना ही मानो उनका अपना समाज है। वे कोलाहल के मध्य में भी मौनता का आनंद भोगते हैं; पर उनका वह एकांत मौन उनके भाइयों के शब्द-नाद से परिपूर्ण है। ऐसे लोग बहुधा ग़रीबी ही में जन्म लेते या पीछे से ग़रीब हो जाते हैं; पर वे अपनी दरिद्रता को अखिल जगत् के राज्याधिकार अथवा धन-भंडार से कदापि बदलना नहीं चाहते। वे समस्त लोकों के सम्राट् हैं। वे सब कर्मों और प्रारब्धों के स्वामी हैं। वे सब प्रारब्धों की आंतरिक पूर्णता और एकता के प्रभु हैं। प्रारब्धों के कारण जो घटनाएँ होती हैं, उनके तो वे स्वामी हैं ही, पर साथही वे उन प्रारब्धों के भी स्वामी हैं। कोई भी ऐसी वस्तु या व्यवस्था नहीं है, जो उनकी इस परिपूर्णता में न्यूनाधिक्य करे।

कोई भी ऐसी वस्तु नहीं, जो उनके लिये इस परिपूर्णता का प्रसाद न होवे। उनकी दरिद्रता की बराबरी सारे संसार की संपत्ति भी नहीं कर सकती। वे सर्वतोभावेन विरक्त होने पर भी बाहुल्य से वेष्टित हैं। संसार के सकल भंडार उन्हींके हैं। वे क्लेशों से खूब परिचित हैं। सर्व-साधारण के जीवन की तरह, उनका जीवन भी संकटों से भरा हुआ होता है, और दूसरों की तरह उनका जहाज़ भी कभी-कभी टूट जाता है; परंतु बाह्य जगत् में प्रतिकूल वायु के प्रचंड वेग की चाहे जितनी प्रबलता हो—बाहरी तूफ़ान की चाहे जितनी प्रचंडता हो—उनके आभ्यंतरिक आकाश की शांति पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। जैसे समुद्र में घोर गर्जन करनेवाली लहरों ही के ऊपर वहाँ के पक्षी आराम करते हैं, वैसे ही उनकी आत्मा गंभीरता की शक्ति का सहारा ढूँढ़ लेती है, और उसी पर विश्राम करती है। प्रचंड तूफ़ान के वक्षःस्थल पर प्रचंड शक्तियों के वेग से उनका हृदय उसी प्रकार झुलाया जाता है, जैसे पलने में एक शिशु। रण-भूमि में भी वे शांति का उपभोग करते हैं, और ऐसी शांति भोगते हैं, जो सर्व प्रकार के ज्ञान से भी आगे बढ़ी हुई है। कोई ऐसा नरक नहीं, जिसमें वे परब्रह्म की मधुर मुस्कान की चमक न देखते हों।

किसी ख़ास धर्म के अनुयायी होने के कारण उनकी ऐसी उन्नत दशा नहीं है। हर-एक धर्म के अनुयायियों में स्वर्ग-पुत्र हैं। परंतु ऐसे जन बहुधा सभी धर्मों की सीमा से बाहर रहते हैं। धर्म नीचे के मार्ग हैं, और वे महात्मा तो शिखर पर रहते हैं—उस शिखर पर, जहाँ सब मार्ग जाकर मिल जाते हैं, जहाँ

सब धर्म संपूर्णता को पहुँच जाते हैं, जहाँ स्वर्ग-लोक भू-लोक में लय हो जाता है; क्योंकि ऐसे स्वर्ग-पुत्र ही पृथ्वी के सच्चे पुत्र हैं। वे पृथ्वी को अपनी जननी की तरह प्यार करते हैं; क्योंकि वह मनुष्य, जो संसार से प्रेम नहीं करता, वह स्वर्ग को समझ ही क्या सकता है? वे संसार में ही स्वर्ग की रचना कर देते हैं, और संसार में ही स्वर्गीय जीवन धारण करते हैं। वास्तव में संसार मनुष्य को स्वर्ग से पृथक् नहीं करता; यह मनुष्य ही है, जो स्वर्ग को संसार से अलग करता है। जब मनुष्य कभी-कभी संसार को नरक बना सकता है, तो वह इसको स्वर्ग भी बना सकता है। नहीं, संसार या शरीर मनुष्य को स्वर्गीय आनंद से जुदा नहीं कर सकते। हाँ, मनुष्य की स्वार्थ-परता ऐसा कर सकती है। यदि मनुष्य स्वर्गीय आनंद को संसार में नहीं पा सकता, तो फिर वह इसे कहाँ पावेगा? स्वार्थ-परता मृत्यु के बाद तक, इस मांस-पिंड के विसर्जन के बाद तक, क़ायम रह जाती है। यदि स्वार्थ-पूर्ण आत्मा पृथ्वी पर क्लेश भोगती है, तो यह चाहे स्वर्गों के स्वर्ग में भी क्यों न चली जाय, वहाँ भी क्लेश ही भोगेगी। ऐसा कौन स्वर्ग है जो अपना आनंद ऐसी आत्मा को प्रदान करेगा, जिसने अपने अंदर ही क्लेश और क्लेश के कारणों को न जीत लिया हो। वह आत्मा स्वर्ग में क्या निवास करेगी, जिसमें स्वर्ग ने निवास ही न किया हो?

जिस स्वर्ग में वे स्वर्गीय पुत्र रहते हैं, वह स्वर्ग उस स्वर्ग से, जिसे धार्मिक-संप्रदायों ने स्वर्ग माना है, इतना दूर है, जितना उनके कथनानुसार नरक दूर है; क्योंकि स्वर्ग और नरक मनुष्य की वासनाओं और उसके भय के भड़कीले चित्र को

अनंत में लटका देते हैं—अर्थात् स्वर्ग की लालसा और नरक का भय मनुष्य की आत्मा को मुक्ति प्रदान करने में उलटे काँटे बन जाते हैं—जब भय और लालसा बनी रही, तो फिर स्वर्ग कैसा ? वासना और भय से बचना ही तो सच्चा स्वर्ग है। ठीक इसी प्रकार उन स्वर्ग-पुत्रों का आनंद भी, जिसे जन-साधारण आनंद बताते हैं, उतना ही भिन्न है, जितना भिन्न उनका बतलाया हुआ दुःख वास्तविक दुःख से; 'क्योंकि जिसे निर्विकार आनंद प्राप्त ही नहीं हुआ है, उसके लिये आनंद साक्षात् दुःख है। भविष्य में आनेवाले दुःख के लिये एक संकेत है, और उसके लिये जो भौतिक बंधन को तोड़ कर सर्व-व्यापकता के अनंत सुख को प्राप्त कर लेता है, उसका दुःख भी आनंद के रूप में बदल जाता है;' क्योंकि सब जीव उसी आनंद के मायावी आकार हैं।

उपनिषद् कहता है—"उसको ढूँढ़ो, जिससे सब भूतों ने जन्म ग्रहण किया है, जिसके द्वारा उत्पन्न भूतमात्र जीवित रहते हैं, और अंततोगत्वा उसीमें लय हो जाते हैं। सब कुछ आनंद ही से उत्पन्न हुआ है। आनंद ही के द्वारा सबका अस्तित्व क़ायम है, फिर सब आनंद ही में मिल जाते हैं।" बस, स्वार्थ-परता के गला-घोटू बंधन को तोड़ते ही, वे आनंद को पुनः प्राप्त हो जाते हैं और शांति-पूर्वक उसमें मिल जाते हैं, जो अनादि, अनंत, असीम, अखंड, निर्दोप और निष्कलंक है—वही पूर्ण-ब्रह्म।

आत्मा को स्वार्थ-परता से मुक्त करना बड़ा भारी बलिदान है। संसार के कुछ मनुष्य इस महत् बलिदान के संपादन में लगे हुए हैं। वे उसका त्याग इसलिये करते हैं कि क्लेश और अंधेपन

(अज्ञानता) में भी एकाग्रता की संपूर्ण शक्ति को पूर्ण-ब्रह्म के स्वरूप का द्वार बना डालें। कितने ही मनुष्य इस आत्म-क्रिया का सविधिसंपादन करके उसका पुरस्कार पाते, स्वतंत्र बनते, और अंत में उसकी पवित्र लीला में भाग लेते अवर्णनीय आनंद का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

यह कोई सिद्धांत नहीं है। सिद्धांत तो किसी प्राचीन ज्ञान का स्थान ग्रहण करने के लिये रचे जाते हैं। जैसे, प्रकाशमान् अंतःकरण का स्थान ग्रहण करने के लिये नियम और प्रणालियाँ बना ली जाती हैं। यह तो सब युगों और सब लोगों के लिये एक समान अनुभव है। इन बातों के विषय में कोई-कोई स्वर्ग के पुत्र कहते-सुनते हैं। हर-एक अपने-अपने विशेष ढंग से कहता है। परंतु सबका अनुभव वही एक है। हाँ, समझने की रीतियाँ हज़ारों हैं। कई तो ऐसे हैं, जो कुछ कहते ही नहीं; क्योंकि वे ऐसा कुछ जानते हैं, जो शब्दों द्वारा कहा ही नहीं जा सकता—समझा ही नहीं जा सकता। वह केवल मौनता द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। परंतु ऐसे महात्मा पुरुष चाहें कुछ कहें या न कहें, वे अपने आचरण से ही अपना आदर्श प्रकट कर देते हैं; किंतु केवल उन्हीं लोगों के लिये, जो उनके जीवन का लक्ष्य या मूल्य समझते हैं। अन्य प्रकार की सभी शिक्षाएँ उनके जीवन की इसी शिक्षा के अंतर्गत आ जाती हैं। केवल यही एक मुख्य वस्तु है, जिसको समस्त संसार के सब लोग जान सकते और प्राप्त कर सकते हैं, तथा सब लोग जिसकी प्रतीक्षा करते हैं; क्योंकि वही एक पदार्थ है, जो सब को आनंदित बना सकता है।

मैंने स्वर्ग-पुत्रों की खोज में संसार का पर्यटन किया है। वह घड़ी आ गई है, जब उन सबको मिलकर एकता के केंद्र की रचना करनी चाहिए। अब वे भविष्य में जन्म लेनेवाले नवीन संसार के हृदय की सृष्टि करें; क्योंकि इन पवित्र पुरुषों में कई सीधी-सादी आत्माएँ भी हैं। कोई खेतों के गड़ेरिए हैं, कोई जातियों के गड़रिए हैं, और कितने तो सांसारिक रणक्षेत्र के योद्धा हैं। यदि उन कइयों को आत्म-चिंतन के प्रकाश के सिवा और किसी तरह का ज्ञान नहीं है, तो कई ऐसे भी हैं, जो आत्मा के स्वर्ग के प्रकाश हैं। यदि कइयों में अपनी आत्मा की उर्वर शांति के अतिरिक्त और कोई शक्ति नहीं है, तो कई ऐसे भी हैं, जो दिव्य-कर्म के स्वामी और भविष्य के निर्माता हैं। स्वर्ग अपना आनंद, तो सबको देता है; परंतु अपनी शक्ति किसी-किसी को ही प्रदान करता है। पौराणिक वीरों और नायकों में आजकल के लोगों का बहुत कम विश्वास है। ऐसे प्राणी इस संसार के नहीं प्रतीत होते। परंतु फिर भी वे इसी संसार में ही हैं। आज के दिन का-सा आत्म-ज्ञान और बल उनमें कभी आया ही न था। ऐसे वे ही नाम-रहित महा पुरुष हैं, जो एक इशारे में सब जातियों के भूत काल की सकल वस्तुओं को भविष्य की जातियों के समक्ष चकनाचूर करके बखेर रहे हैं।

स्वर्ग के पुत्रों की खोज में मैंने संसार का भ्रमण किया है, और अब भी कर रहा हूँ। जिसको अब तक मैंने पाया है, उनमें से एक तो ऐसा था, जिसको कहीं सिर रखने का स्थान भी न था; पर वह अपने आनंद का गान करता और उपदेश देता हुआ सड़कों पर घूमता था। दूसरा एक भविष्य-दर्शी था, जो दस

लाख मनुष्यों का अकेला धर्माचार्य था। इन दोनों से बढ़कर तीसरा एक एकांतवासी था, जो भावी महापुरुष होने के लिये चुना गया है। इन सबके चारों ओर युवक-देवता विराजमान हैं। स्त्रियाँ भी हैं, जिनमें गृह-देवियाँ और पूजनीया माताएँ सम्मिलित हैं। परंतु किसकी मजाल है, जो उन स्वर्ग-पुत्रियों के परदे को उठा दे······

ऐसे ही संत-पुरुषों को ढूँढ़ता-ढूँढ़ता मैं यहाँ (जापान) तक आ पहुँचा हूँ; अब इन सब महापुरुषों को, पूर्व और पश्चिम—दोनों ही—दिशाओं से आकर, एकत्र होना चाहिए; क्योंकि जिसके शुभागमन अथवा अवतार की प्रतीक्षा, भिन्न-भिन्न नामों से, भिन्न-भिन्न जातियाँ कर रही हैं, मनुष्यत्व के उसी स्वामी का एक और अनेक शरीर बनाने के लिये इसकी आवश्यकता है। जब वे सब मिल जायँगे, तब उसका अवतार हो जायगा। फिर तो उसके शुभ और पवित्र दर्शनों से मानव-जाति के नेत्र तृप्त हो जायँगे।

सातवाँ प्रकरण

अरविंद घोष

[टोकियो के वासेदा-विश्वविद्यालय के एशियाटिक विद्यार्थि-सम्मेलन में, ३ मई सन् १९१९ को, यह व्याख्यान दिया गया था]

मित्रो, मैं न केवल अपने शब्द ही, बल्कि अपने हृदय को भी, आपके समक्ष रखता हूँ। मेरा हृदय ही आपके नव-जात और सुयोग्य सम्मेलन का अभिवादन करता है; क्योंकि यह सम्मेलन मेरी दो परम-प्रिय व्यवस्थाओं को एक ही बार में स्मरण कराता है। एक प्रकार से तो मैं इसको माता की तरह प्यार करता हूँ; क्योंकि एशिया संसार-मात्र की आध्यात्मिक माता है। दूसरी तरह से मैं इसे बच्चे की तरह प्यार करता हूँ; क्योंकि यह बच्चा भविष्य का प्रभात है। आप ही पर एशिया का भविष्य निर्भर है, बल्कि आप ही पर सारी दुनिया का भावी कल्याण अवलंबित है।

आप ही उस कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं, जिसका पालन करना आवश्यक है। आपका यह समाज भिन्न-भिन्न जातियों के विद्यार्थियों में भ्रातृत्व का भव्य भाव उत्पन्न करके उन्हें पारस्परिक प्रेम के कोमल बंधन में बाँध रहा है। एशिया के विचारशील विद्यार्थी युवकों को एक सूत्र में ग्रथित करके यह समाज समस्त एशिया की एकता का आयोजन कर रहा है। यह भावी एशिया को

मिला रहा है; क्योंकि भविष्य का एशिया एकता के सूत्र में आबद्ध हो जायगा।

इसी एकता में एक उच्चतर जीवन और एक विशेष संपूर्ण सभ्यता के भावी लक्षण अंतर्व्याप्त हैं। इसी एकता में एक महती आत्मा निवास करेगी, जिसका निर्माण एशिया के हर-एक देश के उत्तमोत्तम गुणों के एकीकरण से होगा। जापान का चैतन्य, चीन की बुद्धिमत्ता और भारतवर्ष की आध्यात्मिक सभ्यता, तीनों उसमें सम्मिलित हो जायँगी। भविष्य की इस विशाल आत्मा में एशिया के समस्त उन्नत विचार अपना स्थान प्राप्त कर लेंगे। वे विचार वैदिक, शिंटो, बौद्ध, टेवो, ईसाई तथा इस्लाम के तत्त्वों और देवताओं को एकत्र कर देंगे; क्योंकि ये सब धर्म उस एक ही धर्म के भिन्न-भिन्न रूप हैं, जो परब्रह्म परमात्मा को जानने और उसका सुयश गाने के लिये रचा गया है।

भविष्य के मनुष्य से इसी भविष्य की आत्मा का निर्माण होगा। ऐसा निर्माण योरप के किसी पुरुष-सिंह से नहीं होगा। पाश्चात्य देशों में ऐसे विशाल व्यक्ति का अवतार नहीं होगा; क्योंकि उसकी शक्ति का अहंकार पुरानी दुनिया (योरप) का नाश ही करने में सफल हुआ है। नवीन संसार की रचना करनेवाला ऐसा अवतार एशिया का ही कोई पवित्रतम मानुषिक देवता होगा। इसी अवतार के शुभागमन के लिये समस्त संसार गड़बड़ में पड़ गया है। इसी नवीन संस्करण और इसी नूतन सृष्टि के हेतु समस्त ज्ञातियाँ अपनी पुरानी परिपाटियों के विरुद्ध क्रांति मचा रही हैं, मनुष्य मनुष्यों को मानव-कर्त्तव्य पालन करने के लिये देश-देश में उपदेश दे रहे हैं; परंतु वे उनकी एक नहीं

सुनते। इसका कारण यही है कि वे अपनी आत्माओं की गहराई में इस बात का अनुभव कर रहे हैं कि मनुष्यत्व से भी कुछ-न-कुछ श्रेष्ठतर होने की संभावना है, जो उनमें चैतन्य उत्पन्न कर रही है।

अतएव, मैं आपके पास यह कहने के लिये ही उपस्थित हुआ हूँ कि आप अपने को तैयार कीजिए, अपने को ऐश्वर्य-शाली और प्रतापी बनाइए, भविष्य के लिये सुसज्जित हो जाइए, उस देदीप्यमान भविष्य का निर्माण करने में लग जाइए; क्योंकि बड़ी बातों के संघटित होने की—महत् व्यवस्थाओं के उत्पन्न होने की—और, महत्पुरुषों के, एशिया के पवित्र मनुष्यों के, अवतीर्ण होने की—घड़ी आ गई है। ऐसे विशाल और प्रतापी पुण्यात्मा पुरुष एशिया में अभी से विद्यमान हैं। मैंने अपने जीवन-भर में ऐसे दिव्य नर-रत्नों को सारे संसार के अंदर ढूँढ़ डाला है। मैं सदैव से अपने दिल में जानता रहा हूँ कि इस भूतल पर कहीं-न-कहीं ऐसे मनुष्य अवश्यमेव वर्तमान हैं। यदि ऐसे मनुष्य यत्र-तत्र न होते, तो यह संसार ही मिट जाता; क्योंकि ऐसे ही मनुष्य इस पृथ्वी के प्रकाश और जीवन हैं। ऐसे मनुष्यों में एक अग्रगण्य नेता को, जो भविष्य का एक नायक होगा, मैंने एशिया ही में पाया है।

वह हिंदू है। उसका शुभ नाम है अरविंद घोष। वह सन् १८७२ की १५ वीं अगस्त को कलकत्ते में उत्पन्न हुए थे। वह इस समय ४७ वर्ष के हैं। युवावस्था में वह विद्योपार्जन के निमित्त इँगलैंड भेजे गए थे। वह १४ वर्ष तक इँगलैंड में पढ़ते रहे। पश्चिम की विद्या को उन्होंने सीखा तो, परंतु उनके लिये

वह पर्याप्त नहीं हुई। वह पूर्वीय प्राचीन विद्या तथा भारत के ज्ञान-विज्ञान को भी भली भाँति जानते हैं।

बीस वर्ष की अवस्था में वह भारत को लौटे। श्रीमान् बड़ोदा-नरेश ने उनको अपने विश्वसनीय कार्यों के लिये चुना। इस प्रकार वह बड़ोदा-रियासत में एक ऐसे उच्च और प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त हुए, जिसे पाकर बहुत-से मनुष्य संतुष्ट और कृतार्थ हो जाते हैं। परंतु उनकी अभिलाषाएँ अन्य प्रकार की थीं। उनके अंदर भारत-माता का असीम प्रेम भरा हुआ था। इसीलिये उन्होंने यह दृढ़ संकल्प धारण किया—"मेरी माता के हृदय पर एक बोझ है। जबतक माता का उद्धार न कर लूँ, चैन न लूँगा।" इतना ही नहीं, उन्होंने एक और भी दृढ़तर संकल्प ठाना—"एक दिन मैं ईश्वर को साक्षात् देखूँगा"। इस संकल्प की पूर्ति के लिये उन्होंने बड़ोदा-दरबार वैसे ही छोड़ दिया, जैसे पुरातन काल में गौतम बुद्ध ने साम्राज्य छोड़ा था। उन्होंने ऊँचे ओहदे और हुकूमत के मीठे लालच को त्याग दिया—सांसारिक और आर्थिक लाभों की तिलांजलि दे दी। और, इस प्रकार अपने महान तथा विकट कर्त्तव्य का पालन करने के लिये वह बड़ोदा-राज्य से प्रस्थित हुए।

कलकत्ते जाकर वह नेशनल कालेज (जातीय महाविद्यालय) की स्थापना में सहायक हुए, ताकि सबसे पहले वह अपने युवक साथियों और देशवासियों की आत्माओं को विदेशी अधिकार के नियंत्रण से बचा सकें। साथ ही साथ 'वंदेमातरम्'-नामक एक स्वतंत्र समाचार-पत्र के संचालन में भी उन्होंने भाग लिया। उस (पत्र) के चारों ओर बहुत-से उत्साही युवकों का एक बड़ा मंडल

खड़ा हो गया। उनकी लेखनी और वाणी समान रूप से काम करने लगी। वह लेख लिखने तथा व्याख्यान देने लगे। जब वे भाषण देते थे, तो उनके शब्द उनकी आत्मा की गहराई से, भूत और भविष्य के अंतर्पट से, निकलते थे। बंगाल ने उनका भाषण सुनकर कान फटफटाया। सारा बंग-देश जाग उठा। वही समय हिंदू-नवयुग का आरंभ था। जिस जातीय जागृति का उस समय सूत्रपात हुआ था, वह साल-भर के अंदर ही एक प्रांत से दूसरे प्रांत में फैलती और वर्तमान अदम्य शक्ति तथा विराट आंदोलन की तैयारी के साथ-साथ भविष्य की सफलता का निश्चय करती हुई समस्त भारत में चमक उठी।

तदनंतर वह कारावास में—जो महान् और सुयोग्य व्यक्तियों की पाठशाला है—रख दिए गए। परंतु जब उन पर कोई भी अपराध प्रमाणित न हो सका, जब केवल इसके सिवा कि वह भारत-माता के एक ईश्वर-प्रेरित पैग़ंबर हैं, उन पर कोई दोष साबित नहीं हुआ, तब वह एक वर्ष के पश्चात् छोड़ दिए गए; परंतु उस कारावास में उन्होंने समझ लिया कि उनकी कार्य-सिद्धि के लिये केवल मानुषिक बल ही काफ़ी नहीं था, बल्कि दैवी पराक्रम की भी बड़ी आवश्यकता थी। दैवी शक्तियाँ उनके पास आईं और उनसे बातें कर गईं। तत्पश्चात् उनकी दृष्टि केवल पर-ब्रह्म-परमात्मा पर ही रहने लगी। हर घड़ी और हर जगह वह ब्रह्म ही को देखने लगे। जिस समय सरकारी न्यायालय में मुक़द्दमे की पेशी के समय वह खड़े होते थे, उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव होता था कि हमारे सामने जो हाकिम, वकील, बैरिस्टर, जेलर और क़ैदी इत्यादि उपस्थित हैं, वे घृणित नहीं, बल्कि

आदरणीय और परब्रह्म के मानुपिक अवतार श्रीकृष्ण की मूर्त्तियाँ हैं।

फिर भी वह लिखते ही रहे। उन्होंने 'कर्मयोगी'-नामक मासिकपत्र का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्र द्वारा वह अपने देश-भाइयों को निम्न-लिखित ओजस्वी संदेश देते थे—"जब-तक आध्यात्मिक मुक्ति न प्राप्त हो जाय, तबतक कोई आर्थिक मुक्ति नहीं मिल सकती।" तदनंतर वह एकांतवास करने के लिये पांडिचेरी चले गए, जो दक्षिण-भारत में फ्रांस के अधिकार में है। आज से दस वर्ष पूर्व, कुछ दैवी-घटना-वश, वहीं उनसे मेरी पहले-पहल भेंट हुई। वहाँ वह योग की समाधि में संलग्न हो गए! पाँच वर्ष के पश्चात् जब मैं उनसे दुबारा मिला, तब, उस समय तक, उन्होंने प्रकाश और शक्ति का संचय कर लिया था। वह ऐसा प्रकाश है, जिसके द्वारा स्वर्ग या पृथ्वी, या किसी भी लोक की कोई भी बात, उनसे गुप्त और अज्ञात नहीं रह सकती। वह ऐसी शक्ति है, जिसके द्वारा उनका महत् विचार हर जगह बिना वासना, बिना कष्ट, बिना उतावलेपन और बिना भय के उस सच्चिदानंद की इच्छा-शक्ति का अनुभव करता है।

उसके बाद के पाँच वर्ष और भी व्यतीत हो गए हैं। इन पाँच वर्षों में, मेरी प्रार्थना के अनुसार, एक मासिक पुस्तक के पाँच खंडों द्वारा, दैवी और मानुपिक ज्ञान की एक ऐसी प्रभावशालिनी और उज्ज्वल दार्शनिक शिक्षा उन्होंने दी है, जो मनुष्यों को आज से पहले शायद ही कभी मिली हो। अब वह दिन आ रहा है कि जब वह महान् पुरुष—वह भारत का उद्धारक—अपनी एकांत समाधि और आध्यात्मिक आवरण के अंदर से निकलकर, उज्ज्वल दिन

के पूर्ण प्रकाश में, एशिया के गुरुओं में से एक गुरु—संसार का एक शिक्षक—बनेगा।

जापान में आज प्रथम बार मैं उस दिव्य मूर्त्ति का नाम घोषित करता हूँ; क्योंकि मैं निस्संदेह इस बात को समझता हूँ कि आपही लोग उस दिव्य पुरुष का शुभ नाम पहले-पहल सुनने के योग्य हैं। आज से अरविंद घोष का नाम आपके लिये, आपके इस सम्मेलन के लिये, एशिया के युवक-मात्र के लिये और स्वयं समस्त एशिया के लिये एक संकेत, एक घोषणा, एक कार्यक्रम होना चाहिए; क्योंकि यह शुभ नाम एशिया की स्वतंत्रता और एकता तथा उसके पुनरुत्थान और प्रताप के गौरव-पूर्ण अर्थ से गर्भित है।

परिशिष्ट

जातीय-समानता-संघ

सूत्रपात

जातियों की समानता के लिये यह संघ उस संग्राम के कारण निर्मित किया गया था, जिस संग्राम में समस्त जातियों ने अपना खून एक में मिला दिया; जिसमें अत्यंत घमंडी राष्ट्र को भी, सहायता के लिये व्याकुल होकर, अत्यंत ग़रीब राष्ट्र को पुकारना पड़ा; जिसमें समस्त सभ्यताएँ और विज्ञान हक्के-बक्के रह गए; जिसमें कभी कोई पक्ष उठने लगा और कभी कोई डूबने लगा; जिसमें सब जातियाँ एक दूसरे का संहार करने पर तुल गईं; जिसमें सब मनुष्य पारस्परिक हत्या में रत हो कर यह समझने लगे कि स्थायी शांति और सार्वजनिक संरक्षण तभी स्थिर रह सकते हैं, जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का समान-भाव से आदर करे—समानता के सद्भाव का पालन करे।

जातीय-समानता-संघ का जन्म प्रथम बार जापान में हुआ। जिस समय पेरिस में वह शांति-महासभा (Peace Conference) हुई थी, जिसे लोग वास्तव में शांति-महासभा कहते और मानते हैं, उस समय जापान की बड़ी-बड़ी संस्थाएँ, जो जापान की सर्व प्रकार की शक्तियों की प्रतिनिधि थीं, एकत्र हुईं; और

पेरिस-कान्फरेंस के कतिपय प्रतिनिधियों ने जो पद-दलित जातियों के स्वत्वों की रक्षा के लिये बोलने का प्रस्ताव किया था, उसका उन्होंने (जापानी संस्थाओं ने) समर्थन करने का संकल्प किया। इस प्रकार के जापानी संघ के प्रथम अधिवेशन में, जो एम० टेइशी सुगीटा * के सभापतित्व में हुआ था, निम्न-लिखित पत्र पेरिस की शांति-परिषद् में भेजा गया—

टोकियो, ११ फरवरी १९१९—"शांति-सभा में मित्र-जातियाँ एकत्र होकर राष्ट्र-संघ बनाने और संसार में स्थायी शांति स्थापित करने की चेष्टा कर रही हैं। हम जापानी लोग इस प्रयत्न का हृदय से अनुमोदन करते हैं, और इसकी सफलता के लिये आतुरता-पूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

"परंतु यह देखकर कि राष्ट्रों के पारस्परिक व्यवहारों में जो जातीय पक्षपात और विभेद था, और जो अब भी वर्त्तमान है, वह स्वतंत्रता और समानता के सिद्धांतों के बिल्कुल विरुद्ध है, उसीसे जातियों में पारस्परिक कलह-विग्रह की सदा सृष्टि होती रहती है, जबतक उस पक्षपात और जाति-भेद को न उठाया जायगा, तबतक सर्व प्रकार की शांति-संस्थाएँ और सम्मेलन तथा समझौते बालू की दीवार मात्र होंगे—उनसे सच्ची शांति की कदापि आशा नहीं की जा सकेगी, हम जापान की ३७ संस्थाओं के प्रतिनिधि संसार की जातियों से अनुरोध करते हैं कि वे न्याय और मनुष्यत्व के सिद्धांतानुसार स्थायी शांति की स्थापना करें।

* जापान के हाउस ऑफ़ पीयर्स के भूतपूर्व मेंबर और रि-प्रेसिडेंट।

"जापानी जाति पेरिस की शांति-महासभा से आशा रखती है कि वह जातियों के पारस्परिक संघर्ष, द्वेष और असमानता के भाव को संपूर्णतया नष्ट कर देगी।"

उसी जापानी संघ ने अपने २३ मार्च सन् १९१९ के अधिवेशन में, पेरिस की शांति-महासभा की तत्कालीन प्रवृत्ति से अवगत होकर, वहाँ के सभापति को निम्न-लिखित समाचार, तार द्वारा, भेजने का निश्चय किया—

"जिस राष्ट्र-संघ में जातीय पक्षपात और ऊँच-नीच का व्यवहार क़ायम रक्खा जाय, उसकी स्थापना का जापानी जाति पूर्ण-रूप से विरोध करती है।"

इतना सब कुछ होने पर भी—इस जापानी संघ के लाख विरोध करने पर भी—पेरिस की शांति-महासभा में संसार की अशक्त जातियों के प्रति जो कुछ कुत्सित व्यवहार और छोटे-बड़े का भेद-भाव स्थिर किया गया, वह सब पर विदित ही है। वहाँ नियम बनाए गए। उनमें जापानी प्रतिनिधियों ने कुछ थोड़े परिवर्त्तन करने के लिये प्रस्ताव भी किया, और यद्यपि उस प्रस्ताव का बहुमत से समर्थन भी हुआ; पर, तथापि, अंत में, उस अधिवेशन के सभापति (अमेरिका के प्रधान) विलसन महोदय ने उसे इस बहाने से रद्द कर दिया कि इस प्रकार के परिवर्त्तनों को स्वीकृत करने के लिये बहुमत ही से काम नहीं चल सकता, बल्कि इसके लिये भिन्न-भिन्न पक्षों के बहुमत की एकता का होना भी आवश्यक है। इस प्रतिघात के पश्चात् जापानी संघ ने फिर पेरिस की शांति-महासभा में निम्न-लिखित गंभीर विरोध लिख भेजा—

जापान की राजनीतिक, धार्मिक, सैनिक, जहाज़ी और समाचारपत्र-संबंधी आदि ३७ संस्थाओं ने, २४ अप्रैल १९१९ को, टोकियो के अपने तीसरे अधिवेशन में जातीय पक्षपात और ऊँच-नीच के व्यवहार पर विचार करते हुए यह प्रस्ताव स्वीकृत किया है—

"जापानी जाति ऐसे राष्ट्र-संघ में, जिसमें जातियों के पारस्परिक अनुदार व्यवहार और ऊँच-नीच का विषम भेद-भाव व्याप्त है, सम्मिलित होने से इनकार करती है।"

परंतु जापानी संघ के प्रयत्नों की इस प्रकार की विफलता से इसका साहस घट नहीं गया, बल्कि इसकी शक्ति परिवर्द्धित हो गई। इस संघ ने शांति की एक स्थायी संस्था स्थापित करने और उसको दूसरे देशों में विस्तृत करने का निश्चय कर लिया। इस संघ का एकाकी रहना ही इसकी निर्बलता थी। एशिया और संसार की अन्य जातियों का जब इसमें सहयोग हो जायगा, तब यह शक्तिशाली होकर निश्चित रूप से विजय प्राप्त कर लेगा।

इस संघ के संस्थापकों के निवेदन पर, जापान में जिनके कार्य-कलाप के साथ मेरा घनिष्ठ संबंध रहा है, मैं स्वीकार कर चुका हूँ कि अपने हिंदुस्थानी मित्रों की सहायता के द्वारा जातियों की समानता के निमित्त मैं संघ के उद्देश्यों को भारतवर्ष में विस्तृत करने की व्यवस्था करूँगा।

संघ का साधारण उद्देश्य

विश्व संसार के लिये

(१) संसार की जातियों में प्रजातंत्र के सिद्धांतों की घोषणा करना और उनके स्वत्वों की समानता का संरक्षण—समानता का स्वत्व न केवल जाति-विशेष अथवा व्यक्ति-विशेष के लिये, बल्कि अखिल मानव-जाति की सभी श्रेणियों और सभी वर्णों के लिये आवश्यक है।

(२) प्रत्येक मनुष्य में जो मनुष्यत्व का महत्व है, उसके प्रति प्रतिष्ठा के भाव को जाग्रत और स्थापित करना, चाहे वह मनुष्य किसी जाति, गोत्र अथवा रंग का हो।

(३) सब जातियों के, चाहे वे उन्नत हों अथवा अवनत, उत्थान के लिये चेष्टा करना।

(४) उन्नत जातियों के घमंड तथा अवनत जातियों की दीनता को प्रकाश में लाना।

(५) उस प्रत्यक्ष पाशविकता (पतितावस्था) से, जो पारस्परिक सद्भाव और भ्रातृत्व के अभाव के कारण उपस्थित है, सब जातियों को ऊपर उठाना।

एशिया के लिये

(१) एशिया की भिन्न-भिन्न वर्ण की जातियों के लिये एक स्थायी समझौते और आर्थिक लाभों (स्वार्थों) की समता का निर्माण करके इस महाद्वीप के निवासियों में नैतिक तथा भौतिक एकता की वृद्धि करना।

(२) इसके भिन्न-भिन्न देशों के पारस्परिक संबंधों के

परिपाक और परिवर्द्धन द्वारा इसकी जातियों की कांग्रेस तथा सम्मेलन के संगठन की तैयारी करना।

(३) इसकी जातियों की स्वतंत्र वृद्धि के द्वारा संसार की अन्य जातियों के साथ उनका शांतिमय संबंध स्थापित कराना।

हिंदुस्थान के लिये

(१) ब्रिटिश-साम्राज्य के अधिकार में (कैनेडा और आस्ट्रेलिया आदि के समान) जातीय समानता के स्वत्वों के परिपालन और पुष्टि के निमित्त, अपनी ख़ास समस्याओं के साथ-साथ समस्त मानव-जाति की समानता का प्रश्न सम्मिलित करके, एक महान सिद्धांत स्थापित करना।

(२) जो हिंदुस्थानी बाहर के उपनिवेशों में रहते हैं, उनकी स्थायी सहायता और रक्षा तथा नियमित रीति से उनकी अवस्था की जाँच करने के लिये वास्तविक उपाय करते रहना।

संगठन

इस संघ के विभागों का संगठन संस्थाओं तथा सभासदों के द्वारा किया गया है—अर्थात् इसमें व्यक्ति-विशेष भी सम्मिलित किए गए हैं, और संस्थाएँ तथा सभाएँ भी सम्मिलित की गई हैं।

इस संघ की भारतीय शाखा का खर्च बिना याचना के प्राप्त हुए धन से चल रहा है।

भारत में इस संघ का संचालन इसकी संयुक्त संस्थाओं के प्रतिनिधियों तथा इसकी कमेटी के प्रबंधकर्त्ताओं द्वारा होता है।

इसके विस्तार तथा इसके उद्देश्यों के प्रचार के हेतु एक अखिल राष्ट्रीय दफ्तर (International Bureau) की स्थापना की गई है। इसकी प्रत्येक शाखा और विभाग अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार खर्च में योग देता है।

इसके भिन्न-भिन्न भागों से संवद्ध रहने तथा उनके सिद्धांतानुसार कार्य करने का मूल आधार नीचे-लिखी घोषणा पर निर्भर है—

घोषणा

इतिहास के नाम पर

जिसको सब समय में और सब जातियों ने लिखा है, और जो हमें बतलाता है कि अनंत काल के प्रभातों और सायंकालों के बीच से गुजर कर मनुष्यों के भिन्न-भिन्न कुटुंब और परिवार किस प्रकार उन्नत तथा अवनत और किस प्रकार क्रमानुसार मानुषिक उन्नति के कर्णधार हुए

विज्ञान के नाम पर

जो संसार-भर की सभ्यताओं की कन्या है—जो सबका प्रकाश है—जो प्रत्येक में जगमगाता और बढ़ता है—जो हमें सिखाता है कि मानव-जातियाँ एक दूसरे से बनी हुई हैं; क्योंकि शताब्दियों से वे अपने पारस्परिक विचारों का आदान-प्रदान करने और अपने रुधिर को मिलाने से कभी विमुख नहीं हुई हैं, बल्कि उनके विचारों और खूनों का मिश्रण बराबर जारी रहा है

संसार के सब धर्मों के नाम पर

जिन्हें सब जातियों ने अपने गुरुओं, भविष्यद्वक्ताओं, संरक्षकों और अगुओं की भेंट दी है, और जो हमें शिक्षा देते हैं कि

"समस्त भिन्न-भिन्न भूतों में वही एक अविनाशी और अविकारी परमात्मा व्याप्त है"

(भगवद्गीता, अध्याय १८, श्लोक २०)

"यह संसार एक ऐसा प्रजातंत्र है, जिसके सब नागरिक एक ही तत्व से बने हुए हैं"

(एपिक्टेटस, संवाद १४-२४)

"हम प्रत्येक एक दूसरे के अंग हैं"

(एपिस्ल टू दि रोमंस १४-२४)

"तुम एक दूसरे से उत्पन्न हुए हो"

(कुरान)

"पड़ोसी को अपने आपही की तरह प्यार करो"

(कनफ़ूसियस, चीन)

"दूसरों के साथ हमें वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, जैसा व्यवहार हम उनसे अपने साथ कराना चाहते हैं"

(धम्मपद, १२९)

"पाँचों महाद्वीप एक ही कुटुंब हैं"

(चीन का एक बौद्ध शिला-लेख)

मनुष्यत्व के नाम पर

जो एक और अनंत है—जिसका समस्त सार्वजनिक शरीर, किसी भी भाग में चोट लगने पर, कष्ट पाने लगता है—जो जातियों की विभिन्नता से परिपूर्ण है—जो जातियों की सुदृढ़ता से शक्ति-संपन्न है, और जो उन सब की उन्नति तथा स्वतंत्रता-वृद्धि से स्वयं उत्पन्न होता है

मानुषिक शांति के नाम पर

क्योंकि पारस्परिक आदर-भाव के विना कोई भी शांति स्थिर नहीं रह सकती

विवेक और बुद्धि के नाम पर

जिसकी प्रगति एकता की ओर रहती है

और

आत्मा के नाम पर

जो प्रेम के आश्रय से जीवित रहती है

हम

संसार की मानव-जातियों की समानता

की

घोषणा करते हैं।

गंगा-पुस्तकमाला की नई निराली पुस्तकें

हिन्दी-नवरत्न (संशोधित और संवर्धित सचित्र द्वितीय संस्करण)—इस अद्वितीय आलोचनात्मक बृहत् ग्रंथ के लेखक हैं हिंदी के स्वनामधन्य सुलेखक, सुकवि तथा समालोचक श्रीयुत मिश्र-बंधु। इसमें दो रंगीन और ९ सादे चित्र हैं। सुसंपादित एवं सुसज्जित नवीन संस्करण, पृष्ठ-संख्या ७०० के ऊपर, रेशमी रंगीन सुनहली जिल्द, मूल्य ५)

प्रायश्चित्त-प्रहसन—बँगला के इसी नाम के प्रहसन के आधार पर इसे पं० रूपनारायणजी पांडेय ने लिखा है। पढ़कर हँसते-हँसते पेट में बल पड़ने लगेंगे। विदेशी चाल चलने-वालों का इसमें खूब खाका खींचा गया है। मूल्य ।)

सुकवि-संकीर्तन—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी। इसमें आपने सुकवियों, कविता-प्रेमियों और कवि-कोविदों के आश्रयदाताओं के संबंध में परिचयात्मक लेख लिखे हैं। आपकी ओजस्विनी लेखनी की सभी विशेषताएँ इन लेखों में मौजूद हैं। इस सुंदर, सरल, सरस और प्रौढ़ गद्य का पूर्ण चमत्कार है, इन मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद लेखों में जो बातें वर्णित हैं, वे कभी पुरानी नहीं हो सकतीं। इन्हें बार-बार पढ़ने पर भी जी नहीं ऊब सकता। इसे पढ़ने में एक उपदेशप्रद उपन्यास का-सा आनंद आता है। कहीं साहित्यिक लालित्य है, कहीं अगाध पांडित्य है, कहीं काव्य की कमनीय छटा है, बिलकुल नायाब चीज़ है। इसमें दस चित्र भी हैं। मूल्य १।), सुनहरी रेशमी जिल्द १॥।)

प्रेम-प्रसून—लेखक, श्रीयुत प्रेमचंद जी। इनकी रचना जैसी स्वाभाविक, रोचक और भाव-पूर्ण होती है, वैसी ही शिक्षाप्रद, उत्साह-वर्धक तथा गंभीर भी। प्रेम-प्रसून इन्हीं की एक-से-एक बढ़कर अनूठी कहानियों का संग्रह है। अब

तक इनके जितने गल्प-संग्रह छपे हैं, उनमें यह संग्रह सबसे बढ़कर है। मूल्य १); रंगीन रेशमी सुनहरी जिल्द १॥)

चित्रशाला—कहानियों के श्रेष्ठ लेखक पं० विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक को कौन नहीं जानता? आपकी कहानियाँ पढ़ते-पढ़ते पाठक कभी करुणा से रोने लगते हैं, और कभी विनोद की गुदगुदी से हँसने लगते हैं। हाथ कंगन को आरसी क्या? मूल्य १॥); सुनहरी रेशमी जिल्ददार २)

मनोविज्ञान—लेखक, पंडित चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी०। प्रत्येक शिक्षक और छात्र के पास इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य ही रहनी चाहिए। विषय गहन है, पर लेखन-शैली इतनी सरल और सरस है कि पुस्तक आरंभ करने पर बिना समाप्त किए छोड़ने को जी नहीं चाहता। मनोरंजन और शिक्षा, दोनों का उत्तम साधन है। मूल्य ॥), सुनहरी रेशमी जिल्द १)

रायबहादुर—फ्रांस के सुप्रसिद्ध हास्यरस-लेखक मौलियर के सुविख्यात प्रहसन का यह भावमय अनुवाद है। इस प्रहसन को पढ़कर आप हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाइएगा। भाव, भाषा, शैली, सब में भारतीयता भर जाने से पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। इसकी फड़कती हुई लोचदार भाषा में बड़ा मज़ा है। ऐसी शुद्ध विनोद-पूर्ण एवं सुरुचिवर्द्धक पुस्तक हिंदी में केवल एक-आध ही हैं। मूल्य ॥), सुंदर रेशमी जिल्द १)

हमारे यहाँ हिंदुस्थान-भर की हिंदी-पुस्तकें मिलती हैं। उनपर स्थायी ग्राहकों को -) रुपया कमीशन मिलता है।

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ